[ आज की हिन्दी कहानी का प्रतिनिधि संग्रह ]

# प्रगति और प्यार

सम्पादक—धीरेन्द्र

सोल एजेन्ट
श्री० वेणी ग्रन्थागार,
धर्मपुरा दिल्ली



सरस्वती प्रिंटर्स लि०, जयपुर के लिये
जयन्ती प्रिंटिंग वर्क्स
दिल्ली द्वारा मुद्रित

—शहीद रमेश आर्य की पुण्य स्मृति में—

# आभार-स्वीकार

| | | |
|---|---|---|
| अमृतलाल नागर | — | एटम बम |
| प्रकाशवती-यशपाल | — | नई दुनियां |
| गंगाप्रसाद मिश्र | — | नगद धर्म |
| रांगेय राघव | — | नारी का विक्षोभ |
| अमृतराय | — | सती का शाप |
| विष्णु | — | रहमान का बेटा |

# ✱ परिचय

इस संग्रह का भार जब मेरे कन्धों पर डाला गया तब हमारे सामने सबसे पहिला जो प्रश्न आया वह था कि इसमें किन-किन लेखकों की कहानियाँ ली जांय और पहिली सूची जो मैंने तैयार की उनमें निम्न नाम थे।

प्रेमचन्द, अश्क, अज्ञेय, यशपाल, भगवतीचरण वर्मा, अमृतलाल नागर, नरोत्तम नागर, किशोर साहू, अमृतराय, चन्द्रकिरण, विष्णु और रांगेय राघव।

संग्रह, क्योंकि एक स्वर्गीय की स्मृतिनिधि के लिए निकाला जा रहा था। इसलिए किसी भी कहानी पर पारिश्रमिक देना असम्भव था; इसलिए प्रेमचन्द की कहानी लेने में हम असमर्थ हो गए...

तभी एक दम विचार आया कि क्यों न इन सुपरिचित कहानीकारों को छोड़ कर केवल उनका संग्रह प्रकाशित किया जाय जिन्होंने हाल में ही हिन्दी को नई चीजें दी हैं। यह विचार दृढ़ हुआ, सूची दोहराई गई। और ये नाम सामने रह गए :

अमृतलाल नागर, यशपाल, चंद्रकिरण, किशोर साहू, राँगेय राघव, अमृतराय, विष्णु-कुछ नए नाम हमने इसमें और बढ़ाये : गंगाप्रसाद मिश्र अविनाशचन्द्र और राधाकृष्ण।

भाई काँतिचन्द्र सोनरेक्सा अपनी श्रीमती चन्द्रकिरण की कहानी देने के लिए राज़ी न हुए; क्योंकि उनका मत था : श्रमजीवी लेखकों को

पारिश्रमिक मिलना ही चाहिए। हमने उन्हें परिस्थिति समझाई तो व बोले यदि प्रकाशक मुफ्त छाप रहा है, कोई कागज मुफ्त दे रहा है तो एक क्या मेरी श्रीमती जी का संग्रह का संग्रह ले जाओ, ऐसे तो मैं कहानी बिना मेहनताने नहीं दे सकता ! इसके आगे हम कुछ बोल न सके और हमें आजतक इसका दुख है कि हम चन्द्रकिरण की कहानी इस संग्रह में न छाप सके।

श्रीकिशोर साहू फिल्मी, कलाकार हैं; उनकी कहानियाँ काफी सुन्दर हैं पर उन्होंने हमें अनुमति इसलिए नहीं दी क्योंकि वीरेन्द्र से उनकी व्यक्तिगत झड़प है। हम साहित्य में व्यक्तित्व की इस प्रधानता का विरोध करते हुए यह लिख रहे हैं : भाई साहू ने हिन्दी के एक अच्छे संग्रह को अपनी कहानी से वंचित कर हिंदी के प्रति अन्याय किया है।

इसके बाद सूची फिर दोहराई गई और अन्त में जो नाम हमारे पास बच रहे वे ही इस संग्रह में आपाये हैं।

# ★ हिन्दी कहानी : आज-कल

आदर्श के नाम पर अपराधों की नित नूतन शृंखला उत्पन्न करते रहना आज की हिन्दी कहानी की मौलिक विशेषता है। इन दिनों हिंदी में मुख्यतः अभाव से पीड़ित विचारधारा का मनोरंजक (!) चित्रण ही कहानी का प्रधान रूप है।

अभाव से पीड़ित इस विचार - धारा के तीन भेद विशेषतः कहानियों में पाये जाते हैं। १. पूँजी से श्रम का विरोध, २. विकृत तथा मानसिक व्यभिचार के शब्द - चित्र अर्थात नारी के प्राकृतिक रूप से अप्राकृतिक मांग और ३. आदर्श को उपस्थित करने के लिये ऐसी चेष्टा करना जो अपराध की ओर पाठक को झुकाये। और ऐतिहासिक कहानियों में भी आज के समाज का निरूपण करने में इस प्रकार की शैली, जो यही प्रदर्शित करे कि कहानी बीसवीं सदी का भोंडा चित्र पुराने युग के लिए कर रही है।

आपकी हिन्दी कहानी का विकास आज की सामाजिक और राजनीतिक समस्याओं के सहारे इस प्रकार किया जाता है कि पाठक का दिमाग उसे भली प्रकार ग्रहण नहीं कर पाता। अनेक कहानियों के विचारों एवं शैली में उर्दू की, बंगाली की, और अँग्रेजी के नए वस्तुवादी कथाकारों छाया भी होती है। उर्दू की वासना प्रधान शैली का विशेष प्रयोग इन दिनों किया जा रहा है। ऐसा कहानी में तड़पन, चमक या निखार लाने के लिये ही किया जाता है। गुलामी के बोझ से दबे हमारे हिन्दी कहानीकार मानसिक धरातल में जो परिवर्तन

ले - देकर कर पाता है वह भी स्वतंत्रता का प्रतीक न होकर उच्छृङ्खलता या वासना वादी-प्रदर्शन होता है और उसे ही हमारे आलोचक एवं ग्रंथकार प्रगतशीलता का फतवा देकर भी प्रचारित करने से बाज नहीं आ रहे।

आज प्रगतिशीलता के नाम पर अच्छा खासा मजाक हिन्दी में हो रहा है। सबल और स्वस्थ प्रतीकों को नीरस और बेकार कहकर ऐसी चीजों को प्रगतिशील कहने की बान लोगों को पड़ गई है जो वास्तव में प्रगतिशील नहीं। अलबत्ता उन्हें नया रास्ता कहकर बतलाया जा सकता है। प्रगतिशीलता के हामी, हिन्दी में दो दल स्पष्ट हो गए हैं: एक वे जो मन को प्रधान मानकर मनोविज्ञान के आसरे गहरी अनुभूति पेश करते हैं और दूसरे वे जो जन कल्याण की नींव पर खड़े होकर स्वस्थ वस्तुवाद की कल्पना करते हैं। मन के मनोविज्ञान को हिन्दी में इलाचन्द्र जोशी ने बड़ा विकृत रूप दिया है। उनके पीछे पीछे चलने वालों में भगवती प्रसाद वाजपेयी एकदम लिये जा सकते हैं। अज्ञेय में जो दुरूहता है वे प्रगति और मनकी फिलासफी से हट कर केवल एक जीवनी बनकर ही रह जाती है। 'अश्क' में मध्यवर्ग के व्यङ्ग की अच्छी ताब है पर बाद की रचनाओं में उनका भी रुख एक ही संकेत पर सफलता से चलता दिखाई नहीं पड़ता।

जन कल्याण की सेवा के सहारे आगे बढ़ आने वाले लेखकों की अभी हिन्दी में बहुत कमी है। आज तो इन दोनों की दरम्यानी चीज पनप रही है और उसी को किसी सीमा तक हम प्रगतिशील कहना उपयुक्त समझते हैं। ऐसे कथाकारों में जो सामाजिक एवं राजनैतिक कुंजी भेद है वह लेखकों को अलग-अलग छितरा देता है।

आज स्वतंत्रता और उच्छृङ्खलता को हिन्दी कहानी एक ही श्रेणी में रख रही है। यह आज की कहानी की गुमराही का ज्वलंत नमूना है। स्वतंत्रता अधिकार है, तो उच्छृङ्खलता केवल अनाधिकार! व्यक्ति

क रूप में, आबादी के एक सदस्य की हैसियत से जब व्यक्ति को कुछ अधिकार दिए जाते हैं वहां मुआविजे रूप में उससे निश्चित नियम-कायदों की पाबन्दी भी चाही जाती है। ऐसा होने पर उसे स्वतंत्रता की संज्ञा दी जाती है और व्यर्थ की मनमानी प्रणाली पर यदि व्यक्ति सामाजिक जीवन बिताये तो उसे हम सिवाय उछृङ्खलता के और कह भी क्या सकते हैं आज की हिन्दी की कहानी बेलगाम हो गई है और मनमानी ओर बढ़ती जा रही है।

आज की हमारी कहानी विद्रोह के झण्डे को ऊँचा करके उसे इस प्रकार गिरा देती है, मानो स्वयं ही उसे अपनी ऊँचाई पर लाज आ गई है। कुतुबमीनार की ऊँचाई जैसा आदर्श स्थापित कर देने के बाद जब हम देखते हैं कि युगनारी आत्महत्या कर लेती है तो ऐसा प्रतीत होता है कि जैसे लेखक ने अपनी कमनीय कल्पना द्वारा निर्मित वे ऊँचे महल, जिन्हें वे आज के युग की महत्ता, तथा युग-विषमता के बीच का संयोजक समझकर खड़ा करता आ रहा था, केवल अधिक वीभत्सता और विकृत कीटाणुओं के खंडहर मात्र हैं।

इस प्रकार की परिभाषा कर देने के बाद हम यह विचारने की चेष्टा करते हैं कि आज की हिन्दी कहानी में युग नारी को इस प्रकार नेकनामी की राह पर चला देने के बाद उसे बदनाम करने की क्यों व्यर्थ चेष्टा की जाती है? समय की तासीर क्यों व्यभिचार में क्यों परिणत हो जाती है? आज का लेखक, प्रचारक, उपदेशक और न जाने क्या क्या बनने के बाद मात्र निर्जीव प्रतिगामी क्यों रह जाता है?

इसको और अधिक स्पष्ट रूप में हम यों रख सकते हैं कि आप आज के किसी भी मासिक पत्र या सप्ताहिक समाचार पत्र को उठाइये उसकी कहानी पढ़िये। प्रारम्भ में आप को ऐसा प्रतीत होगा मानो आप ऐसी चीज को पढ़ रहे हैं कि जिसे समस्या मूलक और

उन्नयन की ओर सचेत करने वाली चीज सोचने लगते हैं। लेकिन अब तक एक प्रकार की सहानभूति जो मन ग्रहण कर रहा था, वह चाहता है कि आपने जो विचार निगले हैं वे किसी प्रकार बाहर फेंक दिये जाँय।

आज कहानी को पढ़ लेने के बाद प्रत्येक पाठक यही चाहता है कि वह अपने जीवन में कहानी की उन वर्णित घटनाओं का किसी प्रकार सामंजस्य कर। विषमता के इस युग में वह अपने कार्य, शिक्षा एवं संस्कारों की कतई परवाह नहीं करता और एक ऐसी दुनियाँ के बेकार स्वपन देखना आरम्भ कर देता है जो कभी निर्मित नहीं हो पाती। जिस नए प्रेम और संस्कृति को आज की कहानी प्रचारित कर रही है वह पाठक की सुपुप्त वासना को अधिक तेजी से झकझोर कर उसे निष्क्रिता की ओर अग्रसर कर देती है।

आर्थिक-विषमता की विवेचना से परिपूर्ण कहानी का चित्र भी किसी ठोस एवं रचनात्मक सुझाव अभी पेश नहीं करता। वह तो केवल श्रम की पूँजी के प्रति की गई शिकायत को साँकेकत रूप में कुछ उग्र प्रतिक्रियाओं के सहारे चित्रित कर देता है। लेकिन प्रेम ऐसी कहानियों में भी अपना राग अलापना नहीं छोड़ता है। आज का युग जिन परिस्थतियों के बीच होकर गुजर रहा है वह सब से पहिले मानव के आर्थिक पहलू का सुधार माँगती हैं-उचित और सामूहिक परिष्कार चाहती हैं। पिछले दिन से आर्थिक योजनाओं के निर्माण में भी आशातीत बढ़ोतरी आगई है। लेकिन सफलता अभीतक किसी को भी नहीं मिला पाई।

आज की हिन्दी कहानी का एक विचित्र और मौलिक उद्देश्य मुझे यह भी समझ पड़ता है मानो वह समाज को गुमराह करने की ठान कर ही आगे बढ़ रही है।

आजकी प्रत्येक कहानी इस प्रकार की भावना की ही प्रतिपादन करती प्रतीत होती है। नित नई कहानियाँ, एक ही नारा, आदर्शवाद

के झूठे ढोंगों को फूकने की चेष्टा करती दृष्टिगोचर होती हैं । और इस कृत्य में कुछ ऐसी बेतुकी और बेतरतीब हो जाती हैं, जिन्हें पढ़ कर पाठक यह सोचने लगता है क्या हमारा कहानी साहित्य यही है ? इसी के प्रतिनिधित्व पर हम संसार की अन्य भाषाओं के कहानी साहित्य से मुकाबला कर सकते हैं या अपना कोई निश्चित स्थान बना सकते हैं ? हमारा तो यह विश्वास है कि आज की हिन्दी कहानी साहित्य के लिए आत्मघात होने के सिवा समाज में भी ऐसी समस्याओं का सृजन कर रही हैं जो इस नस्ल के साथ ही आने वाली नस्ल के लिए भी अत्यंत हानिकारक है ।

आज की प्रत्येक कहानी पत्रिका पाठक के थके हारे मन को मनोरंजन प्रदान करने के नाम प्रकाशित हो रही है लेकिन उसकी अधिकाँश कहानियाँ जिस आदर्श को सामने रखती हैं वह पाठक के हृदय में अपने प्रति एक नई हीन भावना जाग्रत करने के सिवा और कुछ स्फूर्ति उत्पन्न नहीं करती । मनोरंजन को केवल मनोरंजन मानकर ही तो उसे जीवन का अङ्ग नहीं माना जा सकता । घड़ी भर मनोरंजन का भी उद्देश्य होना चाहिए, जो हमारी कहानियों में बहुत ही कम मात्रा में मिलता है ।

ऐसी कहानियों द्वारा जगाई गई हीन भावना की प्रति क्रिया विकास की ओर न मुड़कर विनाश की ही ओर स्वाभावतः मुड़ती है और इस प्रवृत्ति के कारण आज का अधिकांश तरुण एवं तरुणी वर्ग अपनी विकृत तथा उच्छृङ्खल मनः स्थिति के सहारे अपने संदिग्धपूर्ण एवं कुरुचिमय विचारों का प्रतिपादन करने की भरसक चेष्टा करना प्रारम्भ कर देता है और इसी का प्रतिफल लिपिबद्ध होकर आज की हिन्दी कहानी का जामा पहिन लेता है ।...

परन्तु अब एक नए दस्ते ने हिंदी की कहानी को नया जामा पह-नाना प्रारम्भ कर दिया है । उन लेखकों में यशपाल, अमृतलाल नागर,

—पन्द्रह

रांगेय राघव, चन्द्रकिरण, गंगाप्रसाद, राधाकृष्ण, अमृतराय, विष्णु, रामचंद्र तिवारी अविनाशचन्द्र, हंसराज, 'रहबर' आदि प्रमुख हैं। इनमें यशपाल और नागर हिंदी के पुराने लोगों के साथ भी लिए जा सकते हैं, पर मैं उन्हें इसी नौजवान दस्ते के साथ रखना इसलिए अधिक उपयुक्त समझता हूँ क्योंकि उनकी रचनायें आज के उस वातावरण के प्रति, जो सभ्यता, के सामन्त कालीन आदर्शों पर टिका हुआ है, एक प्रकार का नया दृष्टिकोण लेकर आगे चलती हैं। हम नयेपन की मांगपर केवल स्वस्थ साहित्य का निर्माण चाहते हैं।

नई और प्रगतिशील कहानियों में वस्तुवाद की अधिकाई होते हुए भी आत्मानुभूति की उनमें कमी नहीं पाई जाती। हमारी आज की जिंदगी को पहिले आर्थिक विषमता एवं राजनैतिक गुलामी के बन्धन से छूटना है, मैं इसका निराकरण समाज-परिवर्तन के साथ साथ मानता हूँ जब कि मेरे कुछ साथी जिन्होंने राजनीति को ही अपना जीवन सौंप दिया है बिलकुल इसके विपरीत हैं।

२२ जुलाई १९४६<br>रङ्गभूमि कार्यालय, दिल्ली.

—वीरेन्द्र

# एटम बम

अमृतलाल नागर

चेतना लौटने लगी। साँस में गंधक की तरह तेज बदबूदार और दम घुटानेवाली हवा भरी हुई थी। कोबायाशी ने महसूस किया कि बम के उस प्राण-घातक धड़ाके की गूंज अभी भी उसके दिलमें धँस रही है। भय अभी भी उस पर छाया हुआ है। उसका दिल ज़ोर-ज़ोर से धड़क रहा है। उसे साँस लेनेमें तकलीफ होती है, उसकी सांस बहुत भारी और धीमी चल रही है।

हारे हुए कोबायाशीका जर्जर मन इन दोनों अनुभावों से खीझ कर कराह उठा। उसका दिल फिर ग़फलतमें डूबने लगा। होश में आने के बाद, मृत्यु के पञ्जे से छुटकर निकल आने पर जो जीवनदायिनी स्फूर्ति और शाँति उसे मिलनी चाहिए थी उसके विपरीत यह अनुभव होनेसे ऊब कर, तन और मनकी सारी कमजोरीके साथ वह चिढ़ उठा। जीवन कोबायाशीके शरीरमें अपने अस्तित्वको सिद्ध करने के लिए विद्रोह करने लगा। उसमें बल का संचार हुआ।

कोबायाशीने आँखें खोलीं। गहरे कुहासेकी तरह दम घुटाने वाला जहरीला धुआँ हर तरफ छाया हुआ था। उसके स्पर्शसे कोबायाशीको अपने रोम-रोममें हजारों सुइयाँ चुभनेका-सा अनुभव हो रहा था। रोम-रोमसे चिनगियाँ छूट रही थीं। उसकी आँखों में भी जलन होने लगी; पानी आगया। कोबायाशीने घबरा कर आँखें मीच लीं।

लेकिन आँखें बन्द कर लेनेसे तो और भी ज्यादा दम घुटता है। कोबायाशीके प्राण घबरा उठे। वे कहीं भी सुरक्षित न थे। मौत अन्धेरे की तरह उसपर छाने लगी। यह हीनावस्था की पराकाष्ठा थी। कोबायाशीकी आत्मा रो उठी। हार कर उसने फिर अपनी आँखें खोल दीं। हठके साथ वह उन्हें खोले ही रहा। जहरीला धुँआ लाल-मिर्चके पाउडर की तरह उसकी आँखोंमें भर रहा था। लाख तकलीफ हो, मगर वह दुनिया को कमसे कम देख तो रहा है। बम गिरनेके बाद भी दुनिया अभी नेस्तनाबूद नहीं हुई—आँखें खुली रहने पर यह तसल्ली तो उसे हो ही रही है। गर्दन घुमा कर उसने हिरोशिमाकी धरतीको देखा, जिस पर वह पड़ा हुआ था। धरती के लिये उसके मनमें ममत्व जाग उठा। कमजोर हाथ आप ही आप आगे बढ़कर अपने नगर की मिट्टीको स्पर्श करने का सुख अनुभव करने लगे।

...मन कहीं खोया। अपने अन्दर उसे किसी जबरदस्त कमीका एहसास हुआ। यह एहसास बढ़ता ही गया। आन्तरिक हृदयसे सुखका अनुभव करते ही उसकी कल्पना दुःखकी ओर प्रेरित हुई। स्मृति झकोले खाने लगी।

चेतन-बुद्धि पर छाये हुये भयसे बचनेके लिये अन्तर-चेतनाकी किसी बातकी विस्मृतिका मोटा पर्दा पड़ रहा था। मौतके चंगुलसे छूटकर निकल आने पर, पार्थिवताकी बोझ स्वरूप धरती के स्पर्श से, जीवनको स्पर्श करने का सुख उसे प्राप्त हुआ था। परन्तु भावना उत्पन्न होते ही उसके सुखमें घुन भी लग गये। भयने नीवें डगमगा दीं। अपनी अनास्थाको दबाने के लिये वह बार-बार जमीन को छूता था। अन्तरके अविश्वास को चमत्कारका रूप देते हुए, इस खुली जगह में पड़े रहनेके बावजूद

अपने जीवित बच जानेके बारेमें उसे भगवान की लीला दिखायी देने लगी ।

करुणा सोतेकी तरह दिलसे फूट निकली । पराजयके आँसू इस तरह अपना रूप बदल कर दिलमें घुमेड़ें ले रहे थे । जहरीले धुँएके कारण आँखोंमें भरे हुए पानीके साथ-साथ वे आंसू भी घुल-मिलकर गालसे ढुलकते हुए जमीन पर टपकने लगे ।

बेहोश होने से कुछ मिनट पहले उसने जिस प्रलयको देखा था, उसकी विकरालता अपने पूरे वजन के साथ कोबायाशीकी स्मृति पर आघात करके उसके टुकड़े-टुकड़े कर रही थी । वह ठीक-ठीक सोच नहीं पा रहा था कि जो दृश्य उसने देखा, वह सत्य था क्या ?....धड़ाका ! जूड़ी बुखारकी कँपकँपीकी तरह जमीन काँप उठी थी । बम था—दुश्मनों का हवाई हमला । हजारों लोग अपने प्राणोंकी पूरी शक्ति लगा कर चीख़ उठे थे ।...कहाँ हैं वे लोग ? वे प्राणान्तक चीखें, वह आर्त्तनाद जो बमके धड़ाके से भी अधिक ऊँचा उठ रहा था—हो इस समय कहाँ है ? खुद वह इस समय कहां है ? और......

कुछ खो देनेका एहसास फिर हुआ । कोबायाशी विचलित हुआ । उसने कराहते हुए करवट बदल कर उठनेकी कोशिश की; लेकिन उसमें हिलने की भी ताब न थी । उसने फिर अपनी गर्दन जमीन पर डाल दी, हवामें काले-काले ज़र्रे भरे हुए थे । धुंआ, गर्मी, जलन, प्यास—उसका हलक़ सूखा जा रहा था । बेचैनी बढ़ रही थी । वह उठना चाहता था । क्या ?—यह अस्पष्ट था । उसके दिमाग़में एक दुनिया चक्कर काट रही थी । नगर, इमारतें, जन-समूहसे भरी हुई सड़कें, आती-जाती सवारियाँ, मोटरें, गाड़ियां, साइकिलें...और...और...दिमाग इन सबमें खोया हुआ कुछ ढूंढ रहा था । अटका, मगर फौरन ही बढ़ गया ।

जीवनके पच्चीस वर्ष जिस वातावरणसे आत्मवत् परिचित और घनिष्ट रहे थे, वह उसके दिमागकी स्क्रीन पर चलती-फिरती तस्वीरोंकी तरह घुमायाँ हो रहा था। लेकिन सब कुछ अस्पष्ट, मिटा-मिटा सा! कल्पना में वे चित्र बड़ी तेज़ीके साथ झलक दिखा कर बिखर जाते थे। इससे कोबायाशीका मन और भी उद्विग्न हो उठा।

प्यास बढ़ रही थी। हलकमें काँटे पड़ गए थे।—और उसमें उठने की भी ताब न थी। एक बूँद पानीके लिये जिन्दगी देहको छोड़ कर चले जानेकी धमकी दे रही थी, और शरीर फिर भी नहीं उठ पाता था; कोबायाशीको इस वक्त मौत ही भली लगी। बड़े दर्दके साथ उसने आँखें बन्द कर लीं।

मगर मौत न आयी।

कोबायाशी सोच रहा था: 'मैंने ऐसा कौनसा अपराध किया था जिसकी ये सज़ा मुझे मिल रही है। अमीरों और अफ़सरों को छोड़कर कौन ऐसा आदमी था जो यह लड़ाई चाहता था। दुनिया अगर दुश्मनी निकालती, तो उन लोगोंसे। हमने उनका क्या बिगाड़ा था? हमें क्यों मारा गया?... प्यास लग रही है। पानी न मिलेगा। ऐसी बुरी मौत मुझे क्यों मिल रही है। ईश्वर! मैंने ऐसा क्या अपराध किया था?'

करुणासागर ईश्वर कोबायाशीके दिलमें उमँडने लगा। आँखोंसे गंगा-जमुना बहने लगी। सबसे बड़े मुंसिफके हुजूरमें लाठी और भैंस वाले न्यायके विरुद्ध वह रो-रो कर फरियाद कर रहा था। आँसू हलाकान किए दे रहे थे। लम्बी-लम्बी हिचकियाँ बँध रही थीं, जिनसे पसलियोंको और सारे शरीर को, बार-बार झटके लग रहे थे। इस तरह, रोनेसे दम घोंटनेवाला ज़हरीला धुँआ जल्दी-जल्दी पेटमें जाता था। उसका जी मिचलाने लगा। उसके प्राण अटकने लगे।

—प्राणोंके भयसे एक लम्बी हिचकी को रोकते हुए जो साँस खींची तो कई पल तक वह उसे अन्दर ही रोके रहा; फिर सुबकियों में वह धीरे-धीरे टूटी। रो भी नहीं सकता!—कोबायाशीकी आंखों में फिर पानी भर आया। कमज़ोर हाथ उठाकर उसने बेजान-सी उंगलियों से अपने आँसू पोंछे।

आंखोंके पानीसे उंगलियोंके दो पोर गीले हुए; उतनी जगहमें तरावट आयी। कोबायाशी की काँटों-पड़ी जबान और हलकको फिरसे तरावट की तलब हुई। प्यास बगूले सी फिर भड़क उठी। हठात् उसने अपनी आँसुओं से नम उँगलियाँ जबान से चाट लीं। दो उँगलियों के बीच में बिखरी हुई आँसुओं की एक बूँद उसकी जबानका जायका बदल गयी। और उसे पछतावा होने लगा—इतनी देर रोया, मगर बेकार ही गया। उसकी फिरसे रोने की तबीयत होने लगी। मगर आँसू अब न निकलते थे। कोबायाशी के दोनों हाथों में ताकत आगयी। नम आँखों से लेकर गीले गालोंके पीछे कनपटियों तक आँसूकी एक बूँद जुटाकर अपनी प्यास बुझाने के लिये वह उङ्गलियाँ दौड़ाने लगा। आँसू खुश्क हो चले थे। और कोबायाशी की प्यास दम तोड़ रही थी।

चक्कर आने लगे। ग़फलत फिर बढ़ने लगी। बराबर सुन्न पड़ते जाने की चेतना अपनी हार पर बुरी तरहसे चिढ़ उठी। और उसकी चिढ़ विद्रोहमें बदलती गयी। गुस्सा शक्ति बनकर उसके शरीरमें दमकने लगा—काबूसे बाहर होने लगा। माथेकी नसें तड़कने लगी। वह एकदम अपने काबूसे बाहर हो गया। दोनों हाथ टेक कर उसने बड़े जोश के साथ उठने की कोशिश की। वह कुछ उठा भी। कमजोरी की वजहसे माथेमें फिर मुरछा आने लगी। उसने सम्हाला: मन भी, तन भी। दोनों हाथ मज़बूतीसे जमीन पर टेके रहा। हाँफते हुए, मुँहसे एक लम्बी

सांस ली; और अपनी भुजाओंके बल पर घिसटकर वह कुछ और उठा। पीठ लगी तो घूमकर देखा—पीछे दीवार थी। उसने जिन्दगी की एक और निशानी देखी। कोआयाशीका हौसला बढ़ा। मौतको पहली शिकस्त देकर पुरुषार्थने गर्वका बोध किया। परन्तु पीड़ा और जड़ताका जोर अभी भी कुछ कम न था। फिर भी उसे शान्ति मिली। दीवार की तरफ देखते ही ध्यान बदला। सिर उठाकर ऊँचे देखा, दीवार टूट गयी थी। उसे आश्चर्यमय प्रसन्नता हुई। दीवार से टूटा हुआ मलवा दूसरी तरफ गिरा था। भगवान ने उसकी कैसी रक्षा की! जीवन के प्रति फिरसे आस्था उत्पन्न होने लगी। टूटी हुई दीवारकी ऊँचाई के साथ-साथ उसका ध्यान और ऊँचा गया। उसे ध्यान आया कि यह तो अस्पताल की दीवार है।...अभी-अभी वह अपनी पत्नीको भरती कराके बाहर निकला था। सबेरेसे उसे दर्द उठ रहे थे, नई जिन्दगी आने को थी। पत्नी, जिसे बच्चा होने वाला था...डॉक्टर, नर्स, मरीजोंके पलँग... डॉक्टरने उससे कहा था; 'बाहर जाकर इन्तजार करो' वह फिर बाहर आकर अस्पताल के नीचे ही कंकड़ों की कच्ची सड़क पर सिगरेट पीते हुए टहलने लगा था। आज उसने कामसे भी छुट्टी ले रखी थी। वह बहुत खुश था। जब अचानक आसमान पर कानोंके पर्दे फाड़ने वाला धमाका हुआ था। अन्धा बना देनेवाली तीव्र प्रकाश की किरणें कहींसे फूटकर चारों तरफ बिखर गयीं। पलक मारते ही काले धुंएकी मोटी चादर बादलों से घिरे हुए आसमान पर तेजीसे बिछती चली गयी। काले धुँए की बरसात होने लगी। चमकते हुए विद्युतकण सारे वातावरण में फैल गये थे। सारा शरीर झुलस गया; दम घुटने लगा था। सैंकड़ों चीखें एक साथ सुनाई दी थीं। इस अस्पताल से भी आयी होंगी। दीवार उसी तरफ़ गिरी है। और उन चीखोंमें उसकी पत्नीकी चीख

भी जरूर शामिल रही होगी ।...कोबायाशीका दिल तड़प उठा । उसे अपनी पत्नीको देखनेकी तीव्र उत्कंठा हुई ।

होशमें आनेके बाद पहली बार कोबायाशीको अपनी पत्नीका ध्यान आया था । बहुत देर से जिसकी स्मृति खोयी हुई थी, उसे पाकर कोबायाशीको एक पलके लिये राहत हुई । इससे उसकी उत्कंठा का वेग और भी तीव्र होगया ।

साल भर पहले उसने विवाह किया था । एक वर्षका यह सुख उसके जीवनकी अमूल्य निधि बन गया था । दुःख, यातना और संघर्षके पिछले चौबीस वर्षों के मरुस्थल से जीवनमें आज की यह महायंत्रणा जुड़कर सुख-शाँतिके एक वर्षको पानी की एक बूँदकी तरह सोख गई थीं ।

बचपनमें ही उसके माँ-बाप मर गये थे । एक छोटा भाई था जिसके भरण-पोषणके लिए कोबायाशी को दस बरसकी उम्रमें ही बुजुर्गोंकी तरह मर्द बनना पड़ा था । दिन और रात जी तोड़ कर मेहनत-मजूरी की, उसे शाहजादेकी तरह पाल-पोस कर बड़ा किया । तीन बरस हुए वह फौजमें भरती होकर चीन की लड़ाई पर चला गया । और फिर कभी न लौटा ।

अपने भाईको खोकर कोबायाशी जिन्दगी से ऊब गया था । जीवन से लड़ने के लिये उसे कहीं से प्रेरणा नहीं मिलती थी । वह निराश हो चुका था । बेवा मकानमालिकनकी लड़की उसके जीवन में नया रस ले आयी । उनका विवाह हुआ ।...और आज उसके घर में एक नयी जिन्दगी आने वाली थी । आज सबेरे से ही वह बड़े जोश में था । उसके सारे जोश और उल्लासपर यह गाज गिरी ! जहरीले धुएँ की तपिशने उसके अन्तर तक को भून दिया था वेदना असह्य होगयी थी, और चेतना लुप्त हो गयी ।

—ऐडूंस

अपनी पत्नीसे मिलने के लिए कोबायाशी सब खोकर तड़प रहा था। वह जैसे बच गया वैसे ही भगवानने शायद उसे भी बचा लिया हो। लेकिन दीवार तो उधर गिरी है।—'नहीं!'

—कोबायाशी चीख उठा। होशमें आनेके बाद पहली बार उसका कंठ फूटा था। सारे शरीर में उत्तेजना की एक लहर दौड़ गयी। स्वर की तेजी से उसके सूखे हुए निष्प्राण कंठमें खराश पैदा हुई। प्यास फिर होश में आयी। कोबायाशी के लिये बैठ रहना असह्य हो गया। अन्दरूनी जोशका दौरा कमज़ोर शरीर को भिंझोड़कर उठाने लगा। दीवार का सहारा लेकर वह अपने पागल जोश के साथ तेजी से उठा। वह दौड़ना चाहता था। दिमाग में दौड़ने की तेजी लिए हुए कमजोर और डगमगाते हुए पैरों से वह धीरे-धीरे अस्पताल के फाटक की तरफ बढ़ा।

फाटक टूट कर गिर चुका था। अन्दर मलबा-मिट्टी जमीन की सतह से लगा हुआ पड़ा था। कुछ नहीं—वीराना! जैसे यहाँ कभी कुछ बना ही न था। सब मिट्टी और खँडहर! दूर दूर तक वीराना—खाली खाली! खाली! उसकी पत्नी नहीं है। उसकी दुनिया नहीं है। वह दुनिया जो उसने पच्चीस बरसों तक देखी, समझी और बरती थी, आज उसे कहीं भी नहीं दिखायी पड़ती। सपने की तरह वह काफूर हो चुकी है।

मीलों तक फैली हुई वीरानी को देख कर वह अपने को भूल गया, अपनी पत्नी को भूल गया। महानाश के विराट शून्य को देखकर उसका अपनापन उसी में विलीन हो गया। उसकी शक्ति उस महा शून्य में लय हो गयी। जीवन के विपरीत यह अनास्था उसे चिढ़ाने लगी। टूटी दीवार का सहारा छोड़ कर वह बेतहाशा दौड़ पड़ा। वह जोर जोर

से चीख रहा था: 'मुझे क्यों मारा ? मुझे क्यों मारा ?'—मीलों तक उजड़े हुए हिरोशिमा नगर के इस खँडहर में लाखों निर्दोष प्राणियों की आत्मा बन कर पागल कोबायाशी चीख रहा था: 'मुझे क्यों मारा ? मुझे क्यों मारा ?'

कैम्प अस्पताल में हजारों जख्मी और पागल लाये जा रहे थे। डाक्टरों को फुर्सत नहीं; नर्सोंको आराम नहीं; लेकिन इलाज कुछ नहीं हो रहा था। क्या इलाज करें ? चारों ओर चीख चिल्लाहट, दर्द और यंत्रणाका हंगामा !'गोरा—दुश्मन ? दुख—दुश्मन ! बादशाह—दुश्मन !'- पागलपन के उस शोर में हर तरफ अपने लिए दर्द का, अपने परिवार और बच्चों के लिये सवाल था, जिसकी यह सजा उन्हें मिली है ! और दुश्मनों के लिये नफरत थी, जिन्होंने बिना किसी अपराध के उनकी जान ली।

अस्पताल के बरामदेमें एक मरीज दहन फाड़ कर चिल्ला उठा: 'मुझे क्यों मारा ? मुझे क्यों मारा ?'

अस्पताल के इंचार्ज डाक्टर सुजुकी इन तमाम आवाजों के बीचमें खोये हुए खड़े थे। वह हार चुके थे। कल से उन्हें नींद नहीं, आराम नहीं, भूख प्यास नहीं। ये पागलों का शोर, दर्द, चीख, कराह ! दिल दिमाग और जिस्म थक चुका था। अभी थोड़ी देर पहले उन्हें खबर मिली थी, नागासाकी पर भी एटम बम गिराया गया। वे इससे चिढ़ उठे थे।—'क्यों नहीं बादशाह और वजीर हार मानलेते ? क्या अपनी झूठी आन के लिये वह जापान को तबाह कर देंगे ?' उन्हें दुश्मनों पर भी गुस्सा आ रहा था: 'इन्हें क्यों मारा गया ? ये किसी के दुश्मन नहीं थे। इन्हें अपने लिए साम्राज्य की चाह नहीं थी। अगर इन का अपराध है तो केवल यही कि यह अपने बादशाह के मजबूरन बनाये हुये गुलाम हैं। व्यक्ति की सत्ता के शिकार हैं। संस्कारों के गुलाम हैं। . . .दुश्मन

इन्हें मार कर खुश है। जापानकी निर्दोष और मूक जनता ने दुश्मनों का क्या बिगाड़ा था जो उनपर एटम बम बरसाये गये ? विज्ञानकी नयी खोज की शक्ति आजमाने के लिए उन्हें लाखों बेजबान बेगुनाहों की जान लेने का क्या अधिकार था! क्या यह धर्म युद्ध है?—सदा-दर्शों के लिये लड़ाई हो रही है? एटम का विनाशकारी प्रयोग विश्वको स्वतन्त्र करने की योजना नहीं, उसे गुलाम बनाने की जिद है; ऐसी जिद जो इन्सान को तबाह करके ही छोड़ेगी। ...और इन्सानियत के दुश्मन कहते हैं कि एटमका आविष्कार मानव बुद्धि की सबसे बड़ी बड़ी सफलता है। ... हिं; पागल कहींके! ...'

नर्स आयी। उसने कहा: 'डॉक्टर सेन्टरसे खबर आयी है: और नये मरीज भेजे जा रहे हैं।'

डॉक्टर सुजुकी के थके चहरेपर सनक भरी सूखी हँसी दिखायी दी। उन्होंने जवाब दिया: 'इन नये मुर्दा मरीजों के लिये नयी जिन्दगी कहां से लाऊँगा, नर्स? विनाश लोलुप स्वार्थी मनुष्य शक्तिका प्रयोग भी जीवन नष्ट करनेके लिए ही कर रहा है; फिर निर्माण का दूसरा जरिया ही क्या रहा? फेंक दो उन जिन्दा लाशों को, हिरोशिमाकी वीरान धरती पर!—या उन्हें जहर दे दो! अस्पताल और डॉक्टर का अब दुनियां में कोई काम नहीं रहा।

नर्स के पास इन फिजूल की बातों के लिए समय नहीं था।—नये मरीज आ रहे हैं। सैकड़ों अस्पतालों में पड़े हैं। वह डॉक्टर पर झुँझला उठी:

'यह वक्त इन बातों का नहीं है डॉक्टर! हमें जिन्दगी को बचाना है। यह हमारा पेशा है, फर्ज है। एटमकी शक्ति से हार कर क्या हम इन्सान और इन्सानियतको चुपचाप मरते हुए देखते रहेंगे? चलिये आइये, मरीजों को इन्जेक्शन लगाना है, आगे का काम करना है।'

नर्स डॉक्टर सुजुकीका हाथ पकड़ कर तेजी से आगे बढ़ गयी।

# नई दुनियाँ

यशपाल

सरीन साहब खीझ रहे थे, माथुर अभी तक नहीं आया। राख-दानी में सिगार की राख झाड़ते हुए मिसेज़ सरीन की ओर देखकर बोले; सोसाइटी के बिना कलचर आ नहीं सकती। इस आदमी को देखो, वायदा किया था कि ठीक पाँच बजे आयगा और देख लो, साढ़े पाँच बज रहे हैं; अभी तक आपका पता नहीं। मज़ा यह है कि जनाब हम पर तोहमत लगाते हैं कि हम अपना वायदा पूरा नहीं करते।...बैराम जी वहाँ मेरी प्रतीक्षा कर रहे होंगे।'

कुर्सियों के चारों ओर रखे गुलदाउदी के गमलों पर दृष्टि डाल एक पीला पत्ता झाड़ते हुए मिसेज़ सरीन ने पूछा—'कैसा वायदा; कौन है यह तुम्हारा मेहमान ?'

'अरे मेहमान क्या !' सिगार से एक कश खेंचते हुए साहब ने उत्तर दिया—'है एक मज़दूर लीडर ! कुछ लोग हैं जिन्होंने यह नया पेशा बना लिया है। पहले मज़दूरों को भड़का देंगे, फिर उनकी वकालत पर अपना निर्वाह चलायेंगे। यह आदमी ज़रा कैंड़े का है। खयाल था उसे यहाँ बुलाकर समझाता। समय खराब है। इन लोगों का यही इलाज है। दबाने से उल्टे शोर मचता है।'

मिसेज़ सरीन बेबी के लिये स्वेटर बुन रही थीं। बुनाई की एक सलाई पूरी कर दूसरी आरम्भ करते हुए उन्होंने कहा, 'तुम्हारे यहाँ

यह झगड़े चलते ही रहते हैं।' फिर बंगले की छत से कटकर आती हुई धूप में लहलहाते हुए फूलों की ओर देखकर वे बोलीं, 'तुम्हें तो मिल और क्लब से फुर्सत ही नहीं मिलती। चैटर्जी के यहाँ के फूल तुम देखो तो हैरान रह जाओ! एक दिन चलो कुछ गमले......'

बरामदे की सीढ़ियों पर आहट पा, अपनी बात छोड़ उन्होंने उस ओर देखा। खद्दर के मैले से कपड़े पहिरे, बगल में काग़ज़ों का बस्ता दबाये, एक युवक बैरे के साथ-साथ उन्हीं की ओर आरहा था। उस ओर देख कुर्सी पर लेटे ही लेटे, सिगार थामे हुए हाथ को बढ़ा सरीन साहब ने कहा, 'आइये कामरेड! बहुत देर कर दी।' साथ में पड़ी कुर्सी की ओर संकेत कर उन्होंने युवक को बैठने का संकेत किया।

कुर्सी पर बैठ काग़ज़ों का बस्ता नीचे घास पर रखते हुए युवक बोला—'देर तो हो ही गई थी कुछ और आपके आदमियों ने कर दी। भीतर आने ही नहीं देना चाहते थे। समझाया, साहब ने चाय पीने के लिये बुलाया है, पर उन्हें यक़ीन ही न आता था।'

'वाह, आप तो इन लोगों के वकील हैं।' हँसकर सरीन साहब ने कहा।

'जी, अपना भला चाहने वालों को बहुत कम लोग पहचानते हैं।' हँसते हुए युवक ने उत्तर दिया।

हाथ की बुनाई को भूल मिसेज़ सरीन युवक की ओर देख रही थीं। उनसे आँखें मिलने पर युवक ने विस्मय के स्वर में पूछा—'मिस कक्कड़, आप यहाँ कहाँ?'...'

उसे टोककर सरीन साहब ने कहा—'अब मिसेज़ सरीन!'

मिसेज़ सरीन मुस्करा दीं और पुराने परिचय के ढंग से उन्होंने पूछा—'मिस्टर माथुर, आप यहाँ कहाँ?'

'यों ही, जीवन का चक्कर !...शायद अंग्रेज़ी की ट्यूशन रखने की ज़रूरत आपको फिर हो !' निस्संकोच से हँसकर माथुर ने कहा, बातचीत से सरीन साहब को मालूम हुआ, जब मिसेज़ सरीन मिस कक्कड़ थीं और आगरे में मैट्रिक की परीक्षा की तैयारी कर रही थीं, कुन्दनलाल माथुर उस समय बी० ए० का विद्यार्थी था और अंग्रेज़ी की पाठ्य पुस्तकें मिस कक्कड़ को दोहराने उनके यहाँ जाया करता था।

तिपाइयों पर हलकी नीली धारी के मेज़पोश बिछे थे। उसी तरह का चाय का सेट बैरा ने लाकर सजा दिया। पेस्ट्री और फलों के स्टैण्ड दूसरी तिपाई पर रख बैरा अदब से एक ओर खड़ा हो गया। बात आरम्भ करने से पहले साहब ने बैरे को ज़रा दूर हटकर खड़ा होने के लिये संकेत कर दिया और कामरेड को सम्बोधन कर उन्होंने कहा—'कहिये फिर काम कैसे चले ?'

सतर्क होकर माथुर ने उत्तर दिया—'सो तो चल ही रहा है।'

'अरे,आप चलने कहाँ देते हैं ?'

'नहीं, ऐसी तो कोई बात नहीं। आपका अभिप्राय ?'

'देखिये, इसमें पर्दे की कोई बात नहीं। आप मिसेज सरीन के पुराने परिचित हैं।' 'आपसे कुछ पर्दा नहीं।' अपनी कुर्सी पर और अधिक पसरते हुए सरीन साहब ने कहा—'मजदूरों के बिना मिल नहीं चल सकती और मिल के बिना यह साढ़े तीन हजार मजदूर कहा जाँयगे ? मिल हमें चलानी है तो जैसे हमें समझ में आयगा वैसे ही चलायेंगे। मजदूर की कोई उचित शिकायत हो, हम उसे दूर न करें तो कहिये। लेकिन यह नहीं हो सकता कि मिल ही उनके हाथ सौंप दी जाय। सिन्डीकेट की बाईस लाख की पूँजी लगी है। इस वर्ष ही साढ़े चार लाख की

नई मैशीनरी मैंने मँगाई है कि हम विदेशी मिलों के मुकाबिले काम कर सकें। इस रकम के सूद का खयाल कीजिये ? और फिर, देश में औद्योगिक उन्नति हो कैसे सकगी यदि हिस्सेदारों को मुनाफा न मिलेगा ? उद्योग के लिये पूँजी कहाँ से आयगी ? आप खुद समझते हैं। मजदूरों की बात दूसरी है। समझते हैं न ?'

माथुर की दृष्टि प्यालों में चाय छोड़ती हुई मिसेज सरीन के हाथों की ओर थी। 'जी...'उसने उत्तर दिया, 'लेकिन...,

'लेकिन नहीं...' हाथ बढ़ा माथुर को सुनते जाने के लिये संकेत कर साहब कहते चले गये; आप सुन लीजिये। साढ़े चार लाख को जो नयी पूंजी लगाई गई है, उसे कुछ करना होगा या नहीं ! उसे लगभग पाँचसौ मज़दूरों का काम करना चाहिये। मैशीनरी का तो गुण ही यह है कि मनुष्य का काम लोहा करता है और सोसाइटी को लाभ होता है, समझो हम पाँच सौ मज़दूरों का काम मैशीन से लेकर दूसरे कारोबार के लिये मज़दूर मुहय्या करते हैं। और देखिये, इस मिल पर जितने कम आदमियों का बोझ होगा, उन्हें उतनी ही अधिक मजदूरी दी जा सकेगी, समझे...,

मिसेज सरीज ने दोनों के सामने एक-एक प्याला बढ़ा दिया और आवश्यकतानुसार चीनी के लिये चीनीदानी आगे कर दी।

प्याले में चम्मच से चीनी मिलाते हुए माथुर ने उत्तर दिया—'आपका कहना समझा परन्तु......'

उन्हें और सुन लेने का संकेत करते हुए साहब कहते चले गये—'मजदूरों और मालिकों के हित एक हैं। उनकी अवस्था सुधारने का प्रयत्न हम लगातार कर रहे हैं। उनके लिये डिस्पेंसरी, उनके बच्चों के लिये स्कूल, खेलने के लिये जगह हम देते हैं। रहने के लिये हवा-

दार क्वाटर बनवा दिये हैं। इन सब कामों के लिये एक इंचार्ज भी हमने रखा है। उसे हम ४०) देते हैं परन्तु वह कुछ ठीक आदमी नहीं। यह काम है सेवा का! इस के लिये ऐसा आदमी हो जिसमें सेवा भाव हो। तनख़ाह की ऐसी कोई बात नहीं। हम पचास-साठ बल्कि सत्तर-पचहत्तर तक दे सकते हैं। आप कोई ऐसा आदमी बताइये जिसमें सेवा भाव हो, जिस पर मजदूरों को विश्वास हो? यह काम तो है वास्तव में आप जैसे आदमियों के करना का!'

पेस्ट्री की प्लेट माथुर की ओर बढ़ाकर वे अपना चाय का प्याला पीने लगे। सरीन साहब की बात से माथुर के चेहरे पर हल्की सी मुस्कराहट फिर गई। आरम्भ में लेकिन'..., कहकर जिस उत्साह से वह सरीन की बात का उत्तर देने के लिये तैयार हुआ था, वह अब उसे व्यर्थ जान पड़ा। परन्तु; समय निभाने के लिये उसने कहा, 'आपका फर्माना ठीक है लेकिन सेवा के सम्बन्ध में अलग-अलग विचार हो सकते हैं। ज़रा मुस्कराकर मिसेज़ सरीन की खद्दर की महीन साड़ी की ओर देखकर उसने कहा—'मिसेज सरीन खद्दर की साड़ी पहर देश की सेवा करती हैं और आप मिल चलाकर देश का भला करते हैं।'

चाय की पहली प्याली वे लोग समाप्त कर चुके हैं, यह देख बैरा प्यालियाँ उठा ले जाना चाहता था। माथुर ने बेतक़ुल्लफी से कहा—'नहीं, अभी एक प्याली और लूँगा!'

'अवश्य,' कहकर मिसेज़ सरीन ने पास रखी हुई साफ प्यालियों की ट्रे की ओर हाथ बढ़ाया। कुछ झेंपकर माथुर को याद आया, बड़े आदमियों के यहाँ चाय की हर प्याली के लिये नयी प्याली इस्तेमाल की जाती है।

नया सिगार सुलगाते हुए सरीन साहब ने कहा, 'खद्दर का विरोध हम नहीं करते। इस गान्धी-जयन्ती पर हमने खद्दर की पांच सौ की

हुण्डियाँ खरीदी हैं। देश में उद्योग धन्दे नहीं हैं इसलिये, बेकारी को रोकने के लिये खद्दर अच्छी चीज है।'

'नहीं साहब', माथुर ने कहा, 'मेरा अभिप्राय भी खद्दर के विरोध से नहीं है। मतलब है सेवा से! मज़दूरों के लिये रात्रि पाठशाला खोलकर या उन्हें दवाई बांटकर भी उनकी सेवा की जा सकती है। दूसरा तरीक़ा है कि वे सहायता के लिये किसी का मुँह न तककर स्वयं मालिक बन जायें......।'

कुर्सी से उठते हुए, विस्मय से आँखें फाड़कर सरीन साहब ने कहा—'ओह, सोशलिज़्म, समाजवाद!' माथुर के उत्तर की प्रतीक्षा किये बिना ही उन्होंने कहा—'हाँ, हाँ, तो यह तो मज़दूरों और मालिकों, दोनों के ही हित को ध्यान में रखकर हो सकता है कि दोनों में किसी तरह झगड़ा न हो। जैसे अहमदाबाद में मज़दूर-महाजन सभा काम कर रही है, वैसे ही आपको भी करना चाहिये!......हां, मेरा एक बहुत ज़रूरी अपोइंटमेण्ट साढ़े पाँच बजे का था। इसलिये आप से पांच बजे आने के लिये अर्ज़ की थी।' मिसेज़ सरीन को सम्बोधन कर उन्होंने कहा—'आप तो परिचित हैं ही। कामरेड की ख़ातिर अच्छी तरह से हो!' माथुर की ओर देख उन्होंने बीच में ही जाने के लिये बाध्य होने के कारण क्षमा माँगी और धुँआँ छोड़ते हुए चल दिये।

कुछ ही क़दम वे गये थे कि लौटकर उन्होंने मिसेज़ सरीन की ओर देखकर पुकारा—'देखना।'

उठकर मिसेज़ सरीन ने बात सुनी। बहुत धीमे स्वर में साहब ने कहा—'इसे समझाने की कोशिश करना। यह नौकरी कर ले तो अच्छा है। सौ रुपये तक कोई बात नहीं!'

लौटकर माथुर से कुछ और खाने का अनुरोध कर मिसेज़ सरीन बोलीं—'छः बरस बाद देखा आपको ! कहाँ रहे आप ? आगरा आपने कब छोड़ दिया ? कानपुर में आप कब से हैं। हम तो यहाँ दो बरस से हैं। अढ़ाई बरस हुए बी० ए० की परीक्षा मैंने दे दी थी..., साहब भी तभी विलायत से लौटे थे। हमारा विवाह हो गया। हमारा एक बेबी है, नौ महीने की। बड़ा स्वीट ( प्यारा ) है। आया ले गई होगी घुमाने। आयेगी अभी थोड़ी देर में। आप क्या यहीं रहते हैं ? कभी मालूम ही न हुआ। हम लोग कहीं आते-जाते भी बहुत कम हैं। कभी-कदा खद्दर भण्डारवाले मुझे पकड़ ले जाते हैं। इन्हें तो मिल और क्लब से फ़ुर्सत ही नहीं मिलती। इनकी जगह पहले एक योरुपियन काम करता था दो हजार पर और मिल को सदा घाटा। इनकी बात यह है कि अपना काम किसी पर नहीं छोड़ते। हिस्सेदारों के लाभ के लिये अपनी तनख़ाह भी पन्द्रह सौ कर दी है। मुनाफ़े में तो बात यह है कि जैसा दूसरों का वैसा इनका, मेहनत तो इन्हें करनी पड़ती है। और फिर झगड़े हड़तालों का डर बना ही रहता है।'

एक ओर रखी हुई सलाइयों को उठाकर बुनाई आरम्भ करते हुए उन्होंने पूछा—'आप यहाँ क्या करते हैं ?...पिता जी क्या आगरे में ही हैं ?'

'पिता जी का देहान्त हो गया, माँ यहीं हैं।' माथुर ने उत्तर दिया—'कहने लायक़ तो मैं कुछ नहीं करता, यों ही मज़दूरों में रहता हूँ।'

इस विषय में आगे पूछना उचित है या नहीं, यह ख़याल कर उन्होंने पूछा—'आपकी स्त्री होंगी ?'

'नहीं, बस माँ है।'

'तो फिर उनकी चिन्ता तो आपको होगी ?'

मिसेज़ सरीन के इस सौहार्द्र से माथुर को छः वर्ष पूर्व का अपना जीवन याद आ गया। जब वृद्ध माता-पिता के साथ घर में रहकर वह अपना भविष्य बनाने का यत्न और चिन्ता किया करता था। उस समय एक ही चिन्ता थी : बड़ी-से-बड़ी परीक्षा पासकर, बड़ी नौकरी पाकर वह सुख से रह सके। प्रत्येक संध्या को वह दो मील चलकर मिस कक्कड़ को अंग्रेजी की ट्यूशन पढ़ाने कक्कड़ साहब के बंगले पर जाता था। उसे याद हो आया उस समय मिस कक्कड़ दुबली-पतली लड़की थीं। परिश्रम से पाठ्यक्रम याद करती थीं। वे भी अपने भविष्य की तैयारी कर रही थीं। बी० ए० पास कर लेने के बाद पन्द्रह सौ रुपये मासिक पानेवाला तथा मिल का मालिक पति पाकर उनका जीवन सफल हो गया! और वह स्वयम ?...बुजुर्गों का ख्याल है वह अपना जीवन बरबाद कर रहा है। परन्तु उसने भी अपने विचार से एक मार्ग चुन लिया है उचित समझकर।

पिछला इतिहास पलक मारते में माथुर की स्मृति में फिर गया। मिसेज़ सरीन उत्तर की प्रतीक्षा में थी। बहुत दिन बाद, पुराने जीवन के परिचित की सहानुभूति ने उसे गहरी स्मृति में उलझा दिया। उसने कहा—'पिता जी का देहान्त हो गया। और कुछ इस ढंग से हुआ कि मेरे विचार बदल गये।'

अपनी ग़रीबी के स्मरण से कुछ संकोच अनुभव कर मिसेज़ सरीन की आंखों में देखते हुए उसने कहा—'आपको याद होगा हमारी आर्थिक अवस्था अच्छी न थी। पिता जी स्कूल मास्टरी करते थे। तेइस वर्ष तक उन्होंने नौकरी की परन्तु उनकी तनख्वाह ४०) से अधिक न बढ़ सकी। उस बुढ़ापे में भी वे आपके भाई को उर्दू पढ़ाने के लिये प्रति

दिन चार मील का चक्कर लगाते थे कि दस रुपये और कमा सकें। मैं भी इसीलिये आपको ट्यूशन पढ़ाने आता था कि कॉलिज का खर्च चल जाय! चाहता था किसी प्रकार एम० ए० पास कर लूं। पास कर लेना कुछ कठिन न था। मुझे शौक़ भी था और वजीफ़ा भी मुझे मिलता था।'

मिसेज़ सरीन की पीली कोमल उंगलियाँ बसंती रंग की ऊन पर तेज़ी से चल रही थीं परन्तु उनके कान थे माथुर की बात की ओर। माथुर ने कहा:—'शक्ति से अधिक परिश्रम करने से पिता बीमार हो गये और बीमारी में दवा न मिल सकने के कारण मर गये।' मिसेज़ सरीन के चेहरे पर करुणा की छाया फैल गई। माथुर कहता चला गया—'बात बिलकुल मामूली है। इस देश या संसार में प्रतिदिन ही अनेक ऐसी घटनायें होती ही रहती हैं। हमारा ध्यान उस ओर नहीं जाता। वे मेरे पिता थे, इसलिये यह घटना मुझे चुभ गई। हुआ यह कि कम विश्राम, परिश्रम की अधिकता और खूराक की कमी से पिता जी का रक्त पतला पड़ने लगा। हृदय की बीमारी ज़ोर पकड़ गई! इधर उधर इलाज कराया। जितने साधन थे, सब कुछ किया। माँ का थोड़ा-बहुत गहना था, वह भी बेच डाला। लेकिन उससे कुछ न बना। डा० दर को आप जानती होंगी। उन्होंने दयाकर फीस न ली और दवाई बताई। सोलह इंजेक्शन लगाने की राय उन्होंने दी। दवाई आगरे में डॉक्सन कम्पनी के यहां मिल सकती थी। दवाई की कीमत उन्होंने मांगी फी नली २२)। कीमत सुनकर मेरी आँखों के सामने अंधेरा छा गया। उस अन्धेरे में १६२) मेरी आंखों के सामने चांदी के गोले-गोले टुकड़ों की तरह नाचने लगे। १६२) का प्रबन्ध मैं कर न सका। पिता के प्राण

बचा सकने वाली दवाई मौजूद थी परन्तु पैसे न थे। पिता का मन रखने के लिये हकीमों के यहाँ से अर्क ला-लाकर उन्हें पिलाया परन्तु मैं जानता था। वे शनैः शनैः समाप्त हो रहे हैं।'

मिसेज़ सरीन ने बुनाई की सिलाइयां एक ओर रख दीं। बटुए से एक रूमाल निकाल मुख से कुछ कहे बिना उन्होंने आंखें पोंछ लीं। माथुर ने कहा—'मुझे अफ़सोस है यह सब सुनाकर मैंने आपको दुखित किया। परन्तु यह हुआ ही और होता है प्रतिदिन! इस बात का दुख नहीं कि पिता की मृत्यु हो गई। 'पिता' तो मरते ही हैं परन्तु वे कुछ दिन ज़िन्दा रह सकते थे। क्योंकि दवाई मौजूद थी। और देखिये, दवाई डॉब्सन कम्पनी की आलमारी में रखी रही इस प्रतीक्षा में कि किसी का खून पतला पड़े, कोई मरने लगे तो १६२) उन्हें दे। मनुष्य के प्राणों की चिन्ता किसी को नहीं १६२) की चिन्ता है।'

मिसेज़ सरीन ने खांसकर एक बेर और आंखें पोंछी। बुनाई की सलाइयाँ एक ओर रख; गाल पर हाथ रख, करुण स्वर में उन्होंने कहा — 'भगवान उनकी आत्मा को शान्ति दे, और वे तन्मयता से माथुर की बात सुनने लगीं।

'आप इस बात को जाने दीजिये,' माथुर कहता चला गया, 'कि मेरे पास या मेरे पिता के पास १६२) नहीं थे। प्रश्न यह है कि पिता जी ने तेइस वर्ष तक स्कूल में लड़कों को पढ़ाया। तेइस वर्ष तक समाज की यह सेवा करने के बाद भी उनका यह अधिकार न हुआ कि बीमारी में ज़रूरी दवाई उन्हें मिल सके? उस समय डॉब्सन कम्पनी के प्रति मुझे बहुत घृणा हुई। परन्तु डॉब्सन कम्पनी का ही क्या दोष? दवाइयों का भण्डार उन्होंने बीमारों की प्राण-रक्षा के लिये एकत्र नहीं किया; एकत्र किया है : पैसा कमाने के लिये! आपकी मिल करोड़ों

गज कपड़ा बुनती है। इसलिये नहीं कि नंगे कपड़ा पा सकें। बल्कि इसलिये कि आप पैसा कमा सकें!'

एक दीर्घ निश्वास छोड़कर मिसेज सरीन ने कहा—'इस संसार में कितनी निर्दयता है?' माथुर ने पूछा,—'निर्दय कौन है?...
उस समय मैंने सोचा मैं क्यों पढ़ रहा हूँ?......हाँ, मैं आपको पढ़ाने क्यों जाता था? कुछ आपकी भलाई के विचार से नहीं। इसलिये कि आपके यहाँ से मुझे १०) मिल सकते थे। मेरे पड़ोस में बीसियों लड़के-लड़कियां थीं जिन्हें पढ़ाया जाना चाहिये था। परन्तु वे दस रुपये नहीं दे सकते थे, इसलिये उन्हें पढ़ाने का खयाल मुझे कभी नहीं आया...।'

उसे रोककर मिसेज सरीन बोलीं,—'नहीं जी, दस रुपये क्या होते हैं। आपने मेरे लिये बहुत परिश्रम किया है। मैं आपकी बहुत कृतज्ञ हूँ।'

'सो आपकी दया है।' माथुर ने उत्तर दिया, 'आप समृद्धि में पली हैं। संकीर्णता आप से दूर रही है। इसलिये आप उदार हैं। परन्तु मैं पढ़ाई किस लिये कर रहा था। इसलिये कि नौकरी कर सकूं। समाज के मनुष्यों के लिये कुछ कर सकने का भाव तो मेरा था नहीं; ऊंची परीक्षा देकर मैं अधिक योग्य बन जाना चाहता था ताकि दूसरों की अपेक्षा मुझे अधिक अच्छी नौकरी मिल सके। मनुष्य समाज में सब जगह परस्पर यही होड़ और द्वन्द्व चल रहा है। व्यापार का अर्थ लोगों की आवश्यकता पूरा करना नहीं बल्कि उनकी जेब से पैसा खींचना है। नौकरी का प्रयोजन भी यही है। शिक्षा और पढ़ाई का प्रयोजन है, दूसरों को पीछे हटाकर अपने लिये स्थान बनाने की योग्यता प्राप्त करना।'

सलाइयाँ दुबारा उठकर बुनाई शुरु करते हुए सहानुभूति के स्वर में मिसेज सरीन ने कहा,—'यह दुनिया है ही ऐसी।'

'है तो!' माथुर ने कुर्सी पर उत्साह से आगे खिसकते हुए कहा, 'परन्तु इसका अर्थ हो जाता है कि इस दुनिया में सब लोगों के लिये स्थान नहीं है। दुनियां में मनुष्यों की सब आवश्यकताओं को पूरा करने योग्य साधन मौजूद हैं, ऐसे साधन पैदा कर सकने की शक्ति मौजूद है उस शक्ति का उपयोग इस काम के लिये नहीं होता। जिन लोगों के हाथ में शक्ति है, वे मनुष्य की इस शक्ति को अपनी शक्ति को पूँजी बढ़ाने के काम में लगाते हैं, जनता के हित में नहीं। जनता परिश्रम करके भी कंगाल है बल्कि उन्हें बेकार बनाकर परिश्रम करने का अधिकार भी उनसे छीन लिया गया है। यह दुनियां स्वयं अपना सर्वनाश कर रही है।'

माथुर की बात मिसेज़ सरीन की समझ में आई या नहीं या बुनाई करती हुई वे कुछ और सोच रही थीं; परन्तु उसके स्वर की तरलता से द्रवित होकर उन्होंने कहा, यह दुनिया तो ऐसी ही है। मनुष्य तो भगवान की दया से जीता है परन्तु जीवन में रुपये-पैसे की आवश्यकता होती ही है। इसी कारण आपके पिता जी को इतना कष्ट हुआ। अब आप कुछ काम कर लीजिये, ताकि आमदनी हो! आपकी माता जी हैं, उन्हें वृद्धावस्था में आराम मिलना चाहिये!' मुस्कराकर उन्होंने कहा, 'और फिर आप विवाह कर लीजिये। साहब आप से जिक्र कर रहे थे न, मजदूरों के हित के कामों के लिये एक आदमी की आवश्यकता है! मेरा ख्याल है, वे आपको सौ रुपया तक दे देंगे। तनख़ाह कम है परन्तु फिलहाल इतना ही सही! क्या ख्याल है आपका?'

माथुर की मुस्कराहट का अभिप्राय अनुमति समझकर मिसेज सरीन भी मुस्करा देना चाहती थीं परन्तु माथुर बोल उठा—'आप बुरा न

मानिये, देखिये ! मेरे सौ रुपये की नौकरी पा जाने से क्या होगा ? हम जिस दुनिया की बात कह रहे थे, वह तो जहां की तहां ही रहेगी ! देखिये, चैन किसको है ! जिनके पास सब कुछ है, उन्हें चैन नहीं। उन्हें भय है, लोग उनसे छीन लेना चाहते हैं। सरीन साहब १५००) और मिल में लाखों के शेयरों के बावजूद फिक्र में रहते हैं, साढ़े तीन हजार मजदूरों को बस में कैसे रखा जाय !...बाज़ार में दूसरी मिलों से कैसे भिड़ा जाय ? ग़रीबी में दिन गुजारने वाले लोग सदा चिन्ता में रहते हैं कि कैसे रोटी का एक टुकड़ा वे झपट सकें ! संकट सबके सामने है। प्रत्येक मनुष्य अपने ही संकट की बात सोचता है। अपना संकट दूसरों के कन्धों पर डालकर बच जाना चाहता है। दूसरे भी ऐसा ही करना चाहते हैं। हम यह नहीं सोचते कि संकट वास्तव में समाज भर का साझा है। इसका उपाय व्यक्तिगत रूप से नहीं, सामाजिक रूप से ही हो सकता है, व्यवस्था को बदलने की जरूरत है : सामाजिक प्रयत्न से !'

'परन्तु आप भी व्यक्ति हैं...' माथुर को रोककर मिसेज़ सरीन ने कहा।

'हूँ मैं व्यक्ति ही ! परन्तु; समझ गया हूँ कि मेरा संकट सामाजिक है और सामाजिक रूप से ही उसका उपाय करना चाहता हूँ। समाज के सबसे बड़े अङ्ग मजदूर वर्ग को उनकी स्थिति, अधिकार और शक्ति की बात समझाने का यत्न करता हूँ। समाज का यही अंग सामाजिक व्यवस्था में परिवर्तन कर सकता है। सरीन साहब मुझे सौ रुपये की तनख्वाह में खरीद लेना चाहते हैं...

मिसेज़ सरीन का चेहरा लज्जा से गुलाबी होता देख क्षमा याचना के स्वर में उसने कहा—'आपको बुरा मालूम हुआ परन्तु बात

सही है । वे अपनी मिल का हित इसी बात में समझते हैं कि मजदूर उनकी दया पर निर्भर रहें । आप ही बताइये, मनुष्यता के नाते क्या यह अधिक अच्छा नहीं कि सब लोग अपने परिश्रम का पूरा फल पा सकें और आत्म-निर्भर हों ?'

'आप ठीक कह रहे हैं', मिसेज़ सरीन बुनाई पर से दृष्टि उठाकर बोलीं, 'परन्तु मजदूरों और मालिकों में सद्‌भाव तो होना ही चाहिये ।'

उग्रस्वर में माथुर ने उत्तर दिया, 'सद्‌भाव हो कैसे सकता है ? जब मालिक होने के नाते कोई दूसरों के परिश्रम से लाभ उठायेगा तो उसे दूसरों को दबा कर रखना ही पड़ेगा...! और दबे हुए लोग अवसर मिलने पर जरूर लड़ेंगे ।' मिसेज़ सरीन चुप-चाप बुनाई करने लगीं ।

कुछ हतप्रतिभ होकर माथुर ने कहा, 'मैं बहुत बक गया । मुझे कुछ अधिक बोलने की आदत हो गई है । अब आज्ञा दीजिये चलता हूँ ! कुछ अप्रिय बातें कह गया हूँ, ख्याल न कीजियेगा । साहब से आप शिकायत करेंगी तो वे और भी नाराज होंगे ।' अपना बस्ता उठाकर माथुर चलने लगा । आत्मीयता से उसे और बैठने के लिये कह, साहब के सिगारों की ओर संकेत कर उन्होंने पूछा—'पीते हैं आप, लीजिये !'

एक सिगार ले उन्हें धन्यवाद देते हुए माथुर ने कहा, 'आज तो आपने खूब खिला पिला दिया परन्तु आप मुझे पहिचान गईं । और कभी तो बुलाइयेगा नहीं, इसीलिये शौके से मैंने भी जितना सामने आया, खा लिया । अब चलूँ; कुछ लोग मेरी प्रतीक्षा कर रहे होंगे ।'

अनुरोध से मिसेज़ सरीन ने आग्रह किया, 'नहीं आप अवश्य आइये । कहाँ रहते हैं आप ?...कभी बुलाना हो तो ?' उन्होंने पूछा ।

'सो सब साहब खूब जानते हैं, माथुर ने हंसकर उत्तर दिया, 'यहीं, मज़दूरों के इस या उस मुहल्ले में ढूंढ़ने पर मिल जाऊंगा ।'

माथुर के चले जाने के बाद मिसेज़ सरीन सोचने लगीं, 'अद्भुत जीव है। जान-बूझकर संकट और कंगाली झेलकर भी खुश है... एक नई दुनियां के ख़याल में ।'

क्लब से लौटकर साहब ने माथुर की बाबत पूछा। लम्बी-चौड़ी कहानी न कह कर मिसेज़ ने उत्तर दिया, 'नहीं वह नौकरी नहीं करना चाहता ।' फिर कुछ सोचकर वे बोलीं, 'शायद समझाने से मान भी जाय ! उसके घर की हालत बहुत ख़राब है ।'

साहब ने माथुर के विषय में फिर कोई जिक्र नहीं किया। परन्तु मिसेज़ को प्रायः उसकी याद आ जाती। सोचती, कितना परिवर्तन उसमें आ गया है ? उस समय कभी ख़याल भी न हो सकता था कि वह ऐसी बातें करने लगेगा। तब वह कितना सीधा और चुप था। उन्हें याद आया, किसी दिन उसके पढ़ाने आने पर माँ कह देतीं, आज शोभा नहीं पढ़ेगी, बाज़ार जाकर फलाँ काम कर आओ ! और वह चुपचाप चला जाता। उस समय उनका स्वास्थ्य सुधारने के लिये पिताजी ने कोठी के लॉन में टेनिस का कोर्ट बनवा-दिया था। हुकुम होने पर वह कोर्स की किताब छोड़कर उन्हें टेनिस खिलाने लगता। कभी इच्छा होने पर पिता जी पढ़ाई बन्द कराकर स्वयं टेनिस खेलते रहते। उस समय वह चुपचाप आज्ञाकारी मजदूर की भाँति था। छरहरा और स्वस्थ अब जैसा ही, परन्तु दैन्य और अधीनता का एक भाव उसके व्यवहार और चेहरे पर छाया रहता था। एक दिन वह उसके साथ टेनिस खेल रही थी कि सहेली कृष्णा आ गई। मज़ाक की तो उसकी आदत थी ही। उसने

मज़ाक किया। परन्तु उस मज़ाक की ओर किसी ने ध्यान नहीं दिया। क्योंकि माथुर की स्थिति के कारण, वैसी बात की सम्भावना न थी।

तब वह छोटा आदमी था परन्तु अब छोटेपन की दीनता और अधीनता की वह छाप उसके चेहरे पर से उड़ गई है। उस समय उसमें और माथुर में वैसा ही अन्तर था जैसा घोड़े और गधे में या कबूतर और तोते में होता है। ऐसा जान पड़ता है कि उस अन्तर को वह अब लाँघ गया है। अब तो वह बिलकुल समानता के दावे से बात करता है। उसे कितना बुरा मालूम हुआ कि सौ रुपये में उसे ख़रीदने का यत्न किया जा रहा है। जैसे उस रोज प्रदर्शनी में बेबी के लिये हमने वह चीनी पिल्ला पौन तीन सौ में खरीदा था।......वह कितने अधिकार और समझदारी से बात करता है! मालूम होता है, पढ़ता बहुत है। याद कर उन्हें दुख होता कि सरीन साहब ने माथुर से कितनी उपेक्षा से बात चीत की। साहब का कुर्सी पर पसरा हुआ दोहारा बदन, फूले-फूले कल्ले, धुआँ उड़ाता हुआ उन्हें दिखाई देने लगा। माथुर की कुछ न सुनकर वे लगातार अपनी ही सुनाते जाना चाहते थे। जैसे कोई बिगड़ैल बच्चा हो। और माथुर गम्भीरता से मुस्कराकर सुनता जाता था, कह लेने दो इसे...

ज़रा सा मुस्कराकर उसने कहा था, 'सौ रुपये में आप मुझे खरीद लेना चाहते हैं,' और उसके मस्तिष्क में कितनी बातें भरी हुई हैं। यदि वे पूरी हो सकें तो संसार का रूप ही बदल जाये। अपने लिये उसे कुछ नहीं चाहिये। फटेहाल मजदूरों के घरों में वह रहता है। आगरे में उसकी माँ शायद भूखी मरती होगी! कहता है कि समाज की समस्या को वह अपनी समस्या के रूप में देखता है। और सरीन

साहब अपनी समस्या को समस्या के रूप में देखते हैं। साहब की कुर्सी पर पसरी भारी भरकम देह और माथुर का, उड़ने के लिए तत्पर बाज का सा, शरीर उसे आमने-सामने दिखाई देने लगे। माथुर के प्रति साहब का व्यवहार उन्हें सम्मानजनक नहीं मालूम नहीं हुआ। उन्होंने सोचा साहब को ऐसा नहीं करना नहीं चाहिये था।...जैसे सरीन और माथुर में कुश्ती होने जा रही। माथुर निर्बल है इसलिए मिसेज की सहानुभूति उसकी ओर है। साहब अपने हैं तो क्या......? माथुर के विषय में फिर कोई चर्चा बहुत दिन तक नहीं हुआ परन्तु समाचार पत्रों में अपनी मिल के मजदूरों के बारे में जब भी कोई चर्चा वह देखतीं, खद्दर के मैले कपड़े पहरे, बगल में बस्ता दबाये माथुर की मूर्ति उनकी आँखों के सामने खड़ी हो जाती। अखबारों में चर्चा चल रहा था, भारतभूषण, मिल्स ने नई मशीनरी मँगाई है और फालतू मजदूरों को कुछ समय के लिए हटा देना चाहती है। मिल-मजदूर मिल्स के इस फैसले के विरुद्ध हड़ताल करने की धमकी दे रहे हैं।

साहब बहुत व्यस्त से रहते थे। कोठी पर दूसरे तीसरे कोई-न-कोई पंचायत होती रहती। कभी दावत होती, कभी चाय! मिसेज प्रबन्ध करते-करते थक गई थीं। भाँति-भाँति के लोग आते, सेठ लोग, साहब लोग, और नेता लोग! एक और दिन पिछवाड़े बगीचे में एक आदमी के लिये चाय क प्रबन्ध हुआ। मिसेज का ख्याल हुआ माथुर आयेगा। परन्तु आये गांधी टोपी और खद्दर के सफेद बुर्राक कपड़े पहरे एक सज्जन। उनसे चर्चा हुआ कि मिल्स में हड़ताल हो हो जाने पर कांग्रेस के प्रधान और कार्य कारिणी उसमें दखल न दें। फिर चुनाव में कांग्रेस के सन्मुख आनेवाली कठिनाई का चर्चा चला। सज्जन ने आग्रह किया और मजबूरी दिखाई। आखिर साहब ने पाँच हजार का एक छोटा सा चेक उन्हें भेंट कर दिया।

इन सब विषयों में मिसेज सरीन से कोई राय न ली जाती परन्तु एक आशंका सी वे अनुभव कर रही थी, जैसे भयंकर आंधी से पूर्व आकाश में उड़ने वाले पक्षी सहम जाते हैं। एक भयंकर उपद्रव की आशंका से मिसेज सरीन का हृदय बैठा जा रहा था। इस बीच में मोटर पर आते-जाते उन्होंने माथुर को मजदूरों की टोलियों के साथ चक्कर लगाते देखा परन्तु उस समय उससे बात करने का अवसर न था।

× × × ×

भारतभूषण, मिल्स में सवा दो मास से हड़ताल थी। सरीन साहब की परेशानी की हद न थी। परन्तु मजदूरों की ज्यादती के सामने सिर झुकाने को वे तैयार न हुए। मिल्स को यदि उन्हें दूसरों की इच्छा के अनुसार चलाना है तो उनकी मिल्कीयत का अर्थ ही क्या? उन्हें न भूख ही लगती, न नींद आती। दो-एक बिस्कुट खाकर जिन का एक पेग ले लेते। चेहरे का रंग पीला पड़ गया और आँखों के नीचे काली छाया फैल गई। यह देख मिसेज सरीन का कलेजा कटकर रह जाता। वह सोचतीं, भाड़ में जाय वह मिल्स! अपनी जान अच्छी या मिल्स! कभी वह सोचतीं इन मजदूरों का ही सिर क्यों फिर गया मजदूरों का अर्थ उनकी दृष्टि में था 'माथुर।'

साहब भीतर बहुत कम आते। दिन भर टेलीफोन की घण्टी बजा करती। कोठी के नौकर, माली, भंगी बड़ी अजीब-अजीब खबरें लाते। आया की मारफत खबरें 'मेम साहब' तक पहुँच जातीं। उन्होंने सुना, हजारों मजदूर लाठियाँ लेकर मिल को लूट लेने और आग लगा देने की धमकी दे रहे हैं। पुलिस और फौज तोपें-बन्दूकें लेकर मिल्स पर छावनी डाले हुए है। कोठी और मिल के बीच की सड़क से हजारों

लाखों आदमियों के ज़ोर-ज़ोर से चिल्लाने का स्वर सुनाई देता-इनक्लाब ज़िन्दाबाद! मज़दूरों का राज हो!' मिसेज़ सरीन घबरा जातीं, कहीं लोग सचमुच ही कोठी पर न चढ़ आएँ। उन्होंने बेबी को बाहर भेजना बन्द कर दिया। नौकरों को होशियार रहने की हिदायत कर दी और दो नये गोरखे पहरेदार खुखरी बाँधकर रात में कोठी का चक्कर लगाने लगे।

बाहर आने-जानेवाले नौकरों ने खबर दी कि हड़ताली मज़दूर लाल झण्डे लेकर रात-दिन मिल के दरवाजे पर डटे रहते हैं। किसी को भीतर नहीं जाने देते। कोई मज़दूर काम करने के लिए जाना चाहता है तो हड़ताली उसकी राह रोक सामने जमीन पर लेट जाते हैं। साहब के हुक्म से पुलिस धरना देने वालों को पकड़ ले जाती है तो उनकी जगह दूसरे आ लेटते हैं। जिन मज़दूरों को पुलिस पकड़ ले गई उनके औरत बच्चे साहब के पास आकर रोने लगे। साहब ने सब को बाहर निकलवा दिया। मिसेज सरीन गागर में बन्द मछली की तरह तड़पतीं। कई दफे उनका मन चाहा कि इस विषय में साहब से बात करें. परन्तु साहब के चेहरे की गम्भीरता देख उनका साहस न हुआ।

बेबी की तबीयत कई दिन से खराब थी। साहब को उस ओर ध्यान देने की फुर्सत न थी। शायद उन्हें इस बात की कुछ खबर ही न थी। मिसेज ने कई दफे इस विषय में उनसे कहना चाहा परन्तु क्षण भर के लिये मिलने पर शब्द उनके मुख से बाहर ही न निकल सके। फोन पर कैप्टेन बुड को बुलाकर उन्होंने बच्चे को दिखा दिया था और यूरोपियन नर्स उसकी देख-रेख कर रही थी। नर्स ने दो दिन से उन्हें बेबी को दूध न पिलाने दिया था। दूध भर जाने के कारण उनकी तबीयत और अधिक परेशान हो रही थी।

पंसारी की दूकान से कोई चीज़ ले आने के लिये उन्होंने नौकर को भेजा था। जिस कागज में वह चीज आई, उसे पढ़कर मिसेज हैरान रह गई। कागज पर मोटे अक्षरों में छपा था, 'मज़दूर समाचार' नीचे उन्हीं की मिलस की मजदूर-हड़ताल का चर्चा था। उसमें शिकायत थी कि अखबार हड़ताल की बाबत सच्ची खबरें नहीं छापते। उनके मुँह रुपया भरकर बन्द कर दिये गये हैं। समाचार था —'सवा सौ मजदूर धरना देने के अपराध में जेल जा चुके हैं। सवा दो महीने से मज़दूरी न मिलने के कारण हज़ारों मज़दूरों के बाल बच्चे भूख से तड़प रहे हैं। मिल के डायरेक्टर गिरफ्तार और हड़ताली मज़दूरों के रोते बिलखते बाल-बच्चों को खींच-खींचकर क्वाटरों से बाहर निकाल उनमें ताले लगा रहे हैं। इस समय जब आप गरम और नरम लिहाफ़ों में अपने बच्चों को सीने से लगा कर सोते हैं, डेढ़ हज़ार मजदूर स्त्री-पुरुष, बच्चे पूस की रातों की गहरी ओस में मैदानों में पड़े कुड़ कुड़ाया करते हैं। इनमें पचास को निमोनिया हो गया है और डेढ़ सौ के क़रीब बुखार से मर रहे हैं। यह सब संकट झेल कर भी मज़दूर डटे रहेंगे— जबतक की मिल मालिक साढ़े तीन सौ मज़दूरों को मिल से निकालने का हुक्म रद्द नहीं कर देते......। मिलमालिक मज़दूरों के परिश्रम से मुनाफ़ा कमाकर उन्हीं की रोटी छीन लें, यह कभी बर्दाश्त नहीं किया जा सकता...।'

काग़ज़ के बीचों बीच मोटे अक्षरों में लिखा था—'भयंकर षड्यंत्र!' और खबर थी :—'मजदूरों में फूट डालने में असफल होकर मिल मालिकों ने बाहर से मजदूर मंगाये हैं। जिन्हें छिपाकर रखा गया है। खबर मिली है कि १७ नवम्बर की रात को (उस रोज १७ नवम्बर थी) उन्हें मोटरों पर बिठाकर मिल—मज़दूरों के विरोध के बावजूद काम

शुरू करने के लिये मिल में ले जाया जायगा। बाहर से बहकाकर लाये गये मजदूर हमारे भाई हैं। उनका और हमारा हित एक ही है। उन्हें याद रखना चाहिए कि मालिकों के हाथ की कठपुतली बनकर वे उसी अवस्था में मिल में दाखिल हो सकेंगे जब वे भारत भूषण मिल्स के मजदूरों के शरीरों को मोटरों से कुचलते हुए मिल में जाने को तैयार हों। हमलोग अपने जीवन की रोटी के लिये लड़ रहे हैं। क्या मज़दूरों ने अपने परिश्रम से लाखों का मुनाफा मिल-मालिकों को इसीलिये कमा कर दिया है कि वे नई मैशीनें लाकर मजदूरों को बेकार कर भूखा मारें! भाइयो, भारतभूषण मिल्स के मजदूर केवल अपने ही पेट के लिये नहीं बल्कि ग़रीब जनता मात्र के लिये रोटी कमाने के अधिकार के लिये लड़ रहे हैं इस लड़ाई में हमारी हार का अर्थ है, हमारी मृत्यु और गरीब जनता का पूंजीपतियों के मुनाफे पर बलिदान हो जाना! हारकर धीरे धीरे भूखे मरने की अपेक्षा हम मजदूर अपने अधिकार की रक्षा के लिये लड़ते हुए मरना पसन्द करेंगे। बाहर से आनेवाले मज़दूरों की मोटरें हमारे मांस और खून के कीचड़ को लांघे बिना मिल के भीतर नहीं जा सकेंगी।... .....देश की आज़ादी के नारे लगानेवाली जनता क्या चुपचाप यह सब देखती रहेगी......?

कुन्दनलाल माथुर
मंत्री, मज़दूर सभा;

काग़ज़ को पढ़कर मिसेज़ सरीन के पैर कांपने लगे। माथुर का विद्रूप से मुस्कराता हुआ चेहरा उसकी आंखों के सामने नाचने लगा। भोलेभाले दिखाई देनेवाले उस चेहरे में कितनी क्रूरता और निर्दयता भरी हुई है। बग़ल में काग़ज़ों का बस्ता दबाये इस आदमी ने कितना बड़ा हत्याकाण्ड मचा दिया है। नई दुनिया का उसका ख्याल कितना

भयंकर है ? उसे कैसे समझाया जाय। उनकी भीगी स्तब्ध आँखों के सामने निमोनिया और बुखार से कराहते, ओस में उघाड़े, भीगकर जाड़े में ठिठुरते हजारों स्त्री पुरुषों का दृश्य दिखाई देने लगा।...यह दृश्य धुँधला होकर उनकी आँखों के सन्मुख दिखाई पड़ने लगा। मनुष्यों के कुचले हुए अङ्गों और कीमा बने हुए मांस का मैदान मिल के चारों ओर फैला हुआ है। उस दल-दल में घुटने तक धंसे हुए, हाँफ-हांफ कर चलते हुए सरीन साहब अपनी मिल की ओर चले जा रहे हैं।...उनका सिर घूम गया। सिर को दोनों हाथों से थामकर वे बैठ गईं। अर्ध - मूर्छित - सी उस अवस्था के दूर होने पर कोठी और मिल के बीच की सड़क से आती हुई नारों की पुकारें महानाश के गर्जन की भांति उन्हें सुनाई देने लगीं और उनकी संज्ञा फिर लोप हो गई।

बगल के कमरे से आकर नर्स ने कहा, 'बेबी के पेट में दवाई नहीं ठहर रही ! जरा फोन पर डाक्टर को खबर कर दीजिये ! डाक्टर ने नौ बजे खबर दे देने को कहा था। मिसेज़ सरीन को याद आया रात के नौ बज गये हैं। लड़खड़ाती हुईं वे बच्चे के कमरे में गईं; वे बच्चे को उठाकर छाती से लगा लेना चाहती थीं परन्तु नर्स ने उन्हें रोक दिया, 'ना, बच्चे को छेड़िये नहीं ?'

बेबस और निराश हो वे फोन करने के लिए ड्राइंग रूम की ओर चलीं, पर्दे को हटाकर उन्होंने दरवाज़े में कदम रखा ही था कि वे ठिठककर रह गईं। साहब कमरे के बीचोंबीच खड़े थे। उनके चेहरे पर क्रोध और झुँझलाहट छाई हुई थी। दो आदमी उनके दाँये-बाँये खड़े हुए थे। बाँयीं ओर खड़ा आदमी कह रहा था, 'हुजूर यह हमसे नहीं हो सकता...मजदूरों के ऊपर लारी हम किस तरह चला दें ! वो सामने से हटते नहीं। आप पुलिस बुलाइये या उन्हें हटाइये। हम

ग़रीब आदमी हैं। हमारे भी बाल बच्चे हैं। हुजूर यह हमसे नहीं हो सकता। हुजूर कल से हम लारी लिये खड़े हैं। हमारा नुकसान हो रहा है। हम हुजूर लखनऊ लौट जायेंगे। हमारी मजदूरी हमें मिल जाय!'

साहब ने गुस्से से पैर पटक कर कहा, 'तुम गाड़ी चलाओ! मज़दूर खुद हट जायगा। उसकी परवा तुम क्यों करता है? लारी मिल के भीतर नहीं जायगा तो कुछ नहीं मिलेगा! बोलो, लारी भीतर ले जायगा कि नहीं ले जायगा?'

'नहीं हुजूर, मज़दूर जबतक सामने से नहीं हटेंगे हम गाड़ी नहीं बढ़ायेंगे! आदमी नीचे आकर मर जायेंगे तो कौन ज़ुम्मेवार होगा?' एक कदम पीछे हटते हुए उस आदमी ने उत्तर दिया।

'जिम्मेवार हम हैं!' ज़ोर से पैर पटक कर साहब ने कहा, 'हमारा हुकुम है! हम बीस लाख तक अपनी इज्ज़त के लिये ख़र्च कर देगा... क्या समझता है तुम?'

सिर हिलाकर और पीछे हटते हुए उस आदमी ने इन्कार किया, 'नहीं हजूर, हम गरीब आदमी हैं। छोटे-छोटे हमारे बाल बच्चे हैं। हम किसी की बद्दुआ नहीं लेगा।'

'निकलजाओ यहाँ से ..जाओ!...आदमियों को उतारकर अपनी गाड़ी ले जाओ!' साहब ने दरवाजे की ओर बाँह बढ़ाकर संकेत करते हुए डाँटा। दूसरे आदमी की ओर घूमकर उन्होंने हुक्म दिया, 'मिल की लारी लाओ एक दम!...हम खुद जायगा।'

दोनों आदमी चले गये और साहब पिंजरे में बन्द शेर की भाँति कमरे में चक्कर काटने लगे। मिसेज़ सरीन आगे कदम न उठा सकीं। पीछे लौटकर वे दीवार का कोना पकड़ खड़ी हो गईं। कुछ भी उनकी

समझ में नहीं आ रहा था। ऐसा जान पड़ता था संसार चक्कर खाकर, ढहाकर गिर पड़ा चाहता है, और भयंकर अन्धकार छाता जा रहा है। उनके हृदय की धड़कन उनके मस्तिष्क में गूँज रही थी। कुछ मिनिट बाद भारी लारी के इंजन के गुर्राकर थम जाने का शब्द सुनाई दिया। उसके साथ ही बरामदे में साहब के जूतों की आहट और एक बार फिर से लारी के इंजन के चलने की घर्राहट सुनाई दी।

मिसेज़ सरीन के हृदय में एक भयंकर आशंका ने कहा, 'साहब चले गये;...उन्हें नहीं जाना चाहिये था। मुझे उन्हें रोक लेना चाहिये था। वे क्या करने जा रहे हैं!' उनका माथा चकरा गया। समीप के सोफ़ा पर वे गिर सी पड़ीं।

नर्स ने आकर पूछा, 'डाक्टर ने बेबी की बाबत क्या कहा? बेबी परेशान है।'

बेबी का नाम सुनते ही मिसेज़ सरीन के सामने से सब दृश्य बदल-कर उनका अपना बेबी दिखाई देने लगा। गिरते हुए संसार का बोझ उनके बेबी को कुचले डाल रहा है। परन्तु दूसरे ही क्षण नर्स के स्थान पर उन्हें वह आदमी दिखाई देने लगा जो अभी साहब के सामने मजदूरों पर मोटर चलाने से इनकार कर रहा था। उनके कानों में उसके शब्द गूँजने लगे—'हुजूर, हमारे छोटे-छोटे बाल-बच्चे हैं। हम किसी की बददुआ नहीं लेंगे...।' और फिर याद आया वह ताजा पढ़ा हुआ मजदूरों का एलान!

दिखाई देने लगा—साहब पैर पटकते हुए मजदूरों को स्वयं लारी से कुचल देने के लिए चले जा रहे हैं। उन्होंने उन्हें रोका क्यों नहीं? हृदय की धड़कन फिर मस्तिष्क में गूँजने लगी। अपने होश

क़ायम रखने के लिये सोफ़े के गद्दे को मुट्ठियों में दबाते हुए उन्होंने चिल्लाकर पुकारा 'ब्वॉय ! जल्दी एक दम गाड़ी; जाने को बोलो ।'

× × × ×

मिसेज़ सरीन की मोटर के सामने, तीव्र प्रकाश की फैली हुई तिकोन में मिल के फाटक के सामने भीड़ के नारे उनके कानों को बहरा किये दे रहे थे । फाटक के सामने आगे-पीछे कई लारियाँ खड़ी थीं । लारियों की ओट से दिखाई दे रहा था कि सामने जमीन पर कुछ आदमी लेटे हुए हैं । सबसे आगे की लारी के समीप मिल के दूसरे कर्मचारियों के साथ साहब खड़े थे । जो कुछ वे कह रहे थे, सुनाई नहीं दे सकता था परन्तु उनकी बाहों और गर्दन के हिलाने से जान पड़ता था कि वे ज़मीन पर लेटे हुए मज़दूरों को सामने से हट जाने के लिये धमका रहे हैं ।

इससे पहले कि मिसेज सरीनकी गाड़ी थम पाये, साहब लपककर सबसे आगे की लारी में ड्राइवर की जगह पर चढ़ गये । मिसेज़ सरीन के मोटर से उतरते ही सबसे आगे की लारी ज़ोर से थर्रा उठी । लारी की दैत्य की सी आँखों से निकले तीव्र प्रकाश की किरणों में फाटक और सामने लेटे हुए मज़दूर चमक उठे । वे आगे बढ़ रही थीं कि लारी चल पड़ी । उन्होंने देखा, सामने लेटे हुए मज़दूर चिल्लाते हुए उठकर एक ओर खड़े होने लगे । भीड़ की चिल्लाहट और नारों के बावजूद लारी आगे बढ़ी । मिसेज़ सरीन को दिखाई दिया, अब भी एक आदमी लेटा हुआ है । लारी झटका खाकर उसे कुचलती हुई आगे निकल गई ।

'खून ! ख़ून ! मार डाला ! मारो हत्यारे को ! माथुरभाई ज़िन्दाबाद ! सरीन मुर्दाबाद ! पूँजीवाद का नाश हो !' की चिल्लाहट मच गई । मिसेज़ सरीन के कुण्ठित कानों में केवल एक शब्द सुनाई दिया—'माथुर

भाई !' झुककर उन्होंने देखा, खून से लथपथ शरीर छटपटा रहा है। कुछ मनुष्य चिल्लाते हुए आगे बढ़कर उस शरीर को उठा एक ओर ले जाना चाहते थे। उसी समय मिसेज़ सरीन का चीख़ और अधिकार पूर्ण शब्द सुनाई दिया—'इधर लाइये इन्हें ! गाड़ी में रखिये !'

'माथुर भाई जिन्दाबाद !' 'सरीन मुर्दाबाद !' के नारे लगाते हुए और ईंट-पत्थर बरसाते हुए मज़दूर साहब की लारी के पीछे मिल में धंस गये। मिसेज़ सरीन माथुर को लिए तेज़ी से कोठी पहुँची। नर्स की सहायता से माथुर के कुचले हुए घायल शरीर को पलंगपर लिटाया गया। कैप्टन वुड नर्स का फ़ोन पाकर बेबी को देखने आये थे। आते ही उन्हों-ने माथुर के अचेत शरीर में इंजेक्शन दिये। अर्ध-चेतना के चिह्न प्रकट होते ही माथुर के मुख से बहुत धीमे स्वर में सुनाई दिया, 'मेहनतकश जिन्दाबाद...!' मूर्छित होजाने से पहले उसके मस्तिष्क और जिह्वा पर जो विचार था, वह प्रकट होगया। डाक्टर वुड ने शरीर के फटे अंगों में टाँके भरे और कुचले हुए अंगों में पट्टियाँ बाँधकर खून का बहना बन्दकर दिया। मिसेज़ सरीन धड़कते हुए हृदय से पलंग के पास खड़ी थीं और नर्स माथुर को सम्भाल रही थी।

मूर्छा दूर होनेपर मिसेज़ सरीन को पहचान माथुर ने पूछा, 'क्या हुआ ?' चुप रहने का संकेत हाथ से करते हुए उन्होंने कहा—'चुप रहिये, सब ठीक है।' माथुर ने फिर प्रश्न किया—'हड़ताल तो नहीं टूटी ?' मिसेज़ सरीन ने फिर चुप रहने का संकेत किया। विकलता से इधर-उधर देखकर, उसने फिर पूछा, 'मेरे साथी कहाँ हैं ? आप मुझे क्यों उठा लाईं ?' अपनी इस करुणा के प्रति, इस अवस्था में भी, माथुर की विरोध भावना देख उन्हें विरोध भरी दुनियाँ और माथुर की नई दुनियाँ का ख़याल आगया। कांपते हुए होठों को दबाकर उन्होंने कहा—'शांत रहिये, भगवान को याद कीजिये !'

दूर से गोली चलने का धड़ा-धड़ शब्द सुनाई दिया। चौंककर माथुर ने पूछा—'क्या गोली चलगई ?' भयंकर धड़ाके के शब्द से समीप के कमरे में लेटा हुआ बच्चा चीखकर रोपड़ा। मिसेज़ सरीन जाकर बच्चे को फिर उठालाईं। उसे माथुर के पलंगपर लिटा आंसू भरे कातर स्वर में उन्होंने कहा—'इसे क्षमा कीजिये, आशीर्वाद दीजिये !'

माथुर के नेत्र चमक उठे। उसने कहा—'जियो......नई दुनियाँ बसाओ ? मिसेज़ की आँखों से आंसू टपक पड़े ! परन्तु माथुर को हिचकी आती देख, चिम्मच से उसके मुख में जल डालने केलिये वे आगे बढ़ीं।

माथुर के श्वास की गति से नर्स ने उन्हें समझादिया कि यह अन्तिम श्वास है। आंसूभरी आँखों से उसके मुख में जल की बूंदे टपकाते हुए वे क्षमा की याचना कर रही थीं।

'भीतर आने की इजाज़त है ?' सुन आँख उठाकर उन्होंने पीछे दरवाज़े की ओर देखा। सिरसे टोपी उतारकर एक पुलिस अफ़सर ने झुककर सलाम किया। आँखें उठाकर मिसेज़ सरीन ने प्रश्न किया, 'क्यों ?'

कठिनता से सुनाई दे सकनेवाले स्वर में उसने कहा, 'बहुत अफ़सोस से दुख समाचार सुनाना पड़ता है...सरीन साहब...उनका शरीर लाया गया है।'

'हे भगवान,...कहकर मिसेज़ सरीन नर्स की बाहों में गिर पड़ीं।

—तिरेपन

# नगद धर्म

गङ्गाप्रसाद मिश्र

'अरे ! तुम यहाँ कब से हो राजीव ?'—अमृत ने प्रसन्नता से भरकर कहा।

राजीव भी अमृत को देखकर राजीव की भाँति खिल गया। किसी वक्त के सहपाठी, रोज साथ खेलने वाले, वर्षों के बाद अचानक ही मिल गए थे, प्रसन्न क्यों न होते ? 'मेरे विषय में तुम नहीं जानते थे कि मैं यहाँ हूँ ? बड़े आश्चर्य की बात है। क्या कभी भी सिनेमा देखने नहीं जाते ?'

'नहीं, सिनेमा देखने की तो फुर्सत ही नहीं मिल पाती। फिर भी सिनेमा देखने और तुम्हारे विषय में जानने से क्या सम्बन्ध है ?'

'भाई, मैं यहीं एक फिल्म कम्पनी का मुख्य अभिनेता हूँ, और माफ करना दोस्त, देश के नौजवान लड़के लड़कियों के हृदयों पर राज्य करता हूँ। मेरी स्थिति से वह जितनी ईर्ष्या करते हैं उतनी शायद उन महान नेताओं से भी नहीं करते, जिन्होंने अपना सब कुछ त्याग कर देश की सेवा में अपनी पूरी उम्र गँवा दी है। पर तुम अच्छे मिले यार, जो मुझे मालूम हो गया कि मुझे भी लोग नहीं जानते हैं—वर्ना मैं तो समझता था कि देश का हर आदमी मुझे जानता है; अब तुमसे क्या छिपाऊँ।'

'माफ करना राजीव, मुझे ऐसी आदत ही पड़ गई है कि मैं अपने अध्ययन में ही लगा रहता हूँ, सिनेमा वगैरह देखने में उसमें बाधा पड़ती है। लेकिन अब जब मालूम हुआ है कि तुम उसमें काम करते हो तो तुम्हारा एकाध फिल्म देखने जरूर आऊँगा।'

'धन्यवाद, धन्यवाद ! तुम भी मुझसे ही शिष्टाचार की बात करने लगे। अच्छा बताओ, रहते कहां हो ? शादी तो कर ही ली होगी, भाभी कैसी है ? बच्चे वच्चे भी हैं क्या ?'

'तुमने तो एकदम इतने सवाल पूछ डाले। मैं यहां के कालिज में मैथेमेटिक का प्रोफेसर हूँ, डिपार्टमेण्ट आव दी हेड...अरे, अरे मैं भी...!'

'नहीं, नहीं, बहुत खूब, 'डिपार्टमेण्ट आव दी हेड' खूब कहा'—कह कर राजीव ठहाका मार कर हँस पड़ा।

'सुन भी, यार। तू तो अब भी वैसी ही हँसी हँसता है। कोई फर्क नहीं आया।'

'यह हँसी तो जवानी है, यार। जिस दिन यह न रहेगी जवानी भी न रहेगी। और तुम्हें देखता हूँ अमृत, तो मालूम होता है कि पहले से जो खोये-खोये रहने की आदत थी उसे तुमने इस बीच में काफी तरक्की दे दी है; और अपनी उम्र से दस बरस बड़े दिखलाई देने की कोशिश कर रहे हो। खैर, बतलाओ, कालिज में मैथेमेटिक्स के हेड आव दी डिपार्टमेण्ट हो ?'

'हां, कालेज के ही पास बँगला मिला है, वहीं रहता हूँ। अभी छः महीने हुए थे घर गया था। माँ मरण शय्या पर पड़ी हुई थीं—उन्होंने जबरदस्ती शादी करवा दी, वर्ना मेरा तो विचार था नहीं।'

'खैर जो कुछ हुआ अच्छा ही हुआ, पर भाभी है कैसी ? शक्ल-सूरत कैसी है ? स्वभाव की कैसी है ?'

'अब यह सब आकर देखना । तुमने शादी की या पूरी तौर से ऐक्टर ही बने हुए हो ?'

'की क्यों नहीं भाई, और शादी क्या की बरबादी कर ली । तुम्हें तो मालूम है, मुझे मेरी बूआ ने पाला था । वे मेरे बचपन में ही अपनी एक सहेली से वचन बद्ध हो चुकी थीं कि उसकी लड़की से मेरा विवाह कर देंगी । अब पिछले साल ही वे मेरे सिर हो गईं कि तू उस लड़की से विवाह कर ले तो मैं काशीवास करने जाऊँ । मेरे इनकार करने पर रो-रो कर घर भरने लगीं—कहने लगीं—'इसी दिन के लिये तुझे पाल-पोसकर बड़ा किया था कि तू हेठी करावेगा ? मेरी बात नीचे डालेगा ? ठीक ही है, मैं तेरी हूँ कौन जो तू मेरी बात माने ?' उनकी समझ ही में न आता था कि मैं ब्याह करना क्यों नहीं चाहता हूँ । जबकि लड़की पढ़ी-लिखी है, आज कल की लड़कियों की तरह हुड़दंगी भी नहीं है, रोटी से लेकर वह पकवान भी बना सकती है, सीना पिरोना वह जानती है, तब कमी क्या रह जाती है ? यह उनकी समझ से परे था कि आज-कल का फैशनेबुल लड़का लड़की में क्या खोजता है । उनके उपकारों से मैं कभी उऋण नहीं हो सकता हूँ, इस कारण से मैं उनकी बात को टाल न सका । विवाह होने पर श्रीमती जी जो आईं तो मेरा उनका स्वभाव छत्तीस के तीन और छै की तरह बिलकुल एक-दूसरे के विपरीत निकला । नये विचारों से उतना ही चिढ़ती हैं जितना कि मैं नये विचारों से भड़कता हूँ । तब बतलाइये कैसे पटे ?'

'अजीब मजाक है दुनियाँ में । मैं तो यार बड़ा आस्तिक हूँ, पर कभी कभी श्रद्धा की चूलें हिलने लगती हैं । यह भगवान करते क्या हैं, भाई । इनको मैं हमेशा धोखा ही खाते देखता हूँ, कोयल का जोड़ कौए के साथ लगाए हैं और कौए को कोयल के साथ । अब अपनी सुनो : मेरी श्रीमती जी मुझे आवश्यकता से अधिक प्रगतिशील मालूम

होती हैं । फलस्वरूप, मैं उनके साथ कदम नहीं मिला पाता, इसलिए मैं उन्हें जँचता नहीं । खैर फिर होंगी बातें, अब कालेज का वक्त हो रहा है । घर आओगे न ?'

'हाँ, हाँ ।'

× × × ×

'हलो, मिसेज अमृत ! क्या हो रहा है ?'

'हो जो रहा है वह तो घर बताऊँगी, मि० राजीव ! पहले आप मुझे यह बतलाइये कि क्या मेरा आपका कोई निज का व्यक्तित्व नहीं है जिससे मुझे पुकारा या जाना जा सके ? क्या यह जरूरी है कि मुझे अमृत के बंगले, अमृत की मोटर और अमृत के कुत्ते की तरह अलग से न जाना जाय ? मुझे हर वक्त अपने मालिक का पट्टा गले से लगाए रखना पड़ेगा, चाहे उससे मेरा दम ही क्यों न घुटने लगे ? तारीफ तो यह है कि आप उन लोगों में से हैं जो अपने को बहुत ही आधुनिक विचारों वाला समझते हैं । सच तो यह है, कि हैं तो पुरुष ही न । पुरुष अगर स्त्री को अपनी सम्पत्ति का एक अङ्ग न समझेंगे, तो उनके अहं को बहुत बड़ा धक्का जो लगेगा ।'

'माफ कीजियेगा मैं उन लोगों में से नहीं हूँ । यह तो यदि आप कुछ दिन मुझे देखेंगी तो जान जायेंगी । अभी मैं डरता था कि दूसरा कोई सम्बन्ध अनधिकार चेष्टा न समझा जाय । इसके अतिरिक्त मैं यह जानता भी न था कि सम्बोधन हो भी क्या सकता है ?'

'क्यों, मेरा नाम छवि है । अगर आपको कष्ट न हो तो आप उसीसे मुझे पुकार सकते हैं ।'

'गुस्ताखी तो न होगी यह ?'

'गुस्ताखी तो मैं उसे समझती हूँ जो आपने पहले की थी'—छबि ने हंसते हुए कहा।

'बहुत अच्छा छबि देवी।'

'मिस्टर, न तो मैं देवी हूँ न दानवी—मानवी ही हूँ।'

'तो फिर मिसेज छबि कहूँ?'

'जी नहीं, सिर्फ छबि ही पर्याप्त होगा।'

'अच्छा यह छबि, झगड़ा तो समाप्त हो गया, अब बताओ हो क्या रहा था?'

'हो रहा था अपना सिर! वक्त काटने के लिये एक उपन्यास पढ़ रही थी और जब उससे भी मन ऊब उठा तब अपने माता पिता को धन्यवाद देने लगी, जिन्होंने एक मैथमेटीशियन के गले बाँध दिया। जिसके पास चौबीस घंटे में मेरे लिए एक मिनट भी नहीं है।'

'यह कहिये, तो आप अमृत पर खफा बैठी थीं! आखिर यह पारा इतना चढ़ा हुआ क्यों है? कहां है अमृत?

'उनके लिये जगह और कहां है सिवाय लायब्रेरी के। बैठे सर मार रहे होंगे किताबों से। मैं यहां दीवारों से सर मार रही हूँ।'

'तो आप कोई क्लब क्यों नहीं 'ज्वाइन' कर लेतीं? शाम के वक्त हो आया कीजिएगा, जरा मन बहल जाया करेगा। शर्त यह है कि अमृत को भी कोई एतराज न हो।'

'सो उनको एतराज किसी बात से नहीं है, चाहे मुर्दा दोजख में जाय चाहे बहिश्त में। बस उनके पढ़ने में बाधा नहीं पहुंचनी चाहिए। बात यह है कि मैं नयी नयी अभी इस शहर में आई हूँ, जानती नहीं हूँ कि कौन क्लब कहां है, कैसा है?

'खैर, यह काम मैं कर दूँगा। मैं आपको क्लब ले चलूंगा।'

'कब ?'

'जब आप चाहें।'

'आज ही ?'

'हां हां।'

'तो मैं जरा ड्रेस कर लूं।'

'जरूर।'

× × × ×

'क्यों साहब हैं ?'

'साहब तो नहीं हैं, हुजूर।

'बहू जी ?

'वह तो हैं।'

'उनसे कहो, अमृत बाबू कुछ बात करना चाहते हैं।'

'बहुत अच्छा, आप कमरे में बैठिये।'

'नमस्ते, प्रोफेसर साहब।'

'नमस्ते-नमस्ते। क्या हो रहा है ?'

'कुछ नहीं यों ही बैठी थी।'

कहां गया राजीव ?'

'कुछ कहकर तो गये नही हैं, पर आज बातचीत हो रही थी कि फुल-मून (पूरा चांद) है, मूनलाइट (चांदनी) पिकनिक होनी चाहिए। क्यों, क्या छबि देवी भी नहीं लौटीं ?'

'तभी तो आपके यहां पता लगाने आया।'

'तो वह भी गई होंगी। मैं खुद खाना लिए बैठी हूँ।'

'यह लोग कहकर जांय तो कोई नुकसान हो जाय ?' प्रोफेसर बोले।

'कुछ नहीं' दर्शिका ने कहा ।

'अच्छा चलूँगा । नमस्ते ।'

'नमस्ते ।'

इन बेचारों की क्या जिन्दगी है—सोचने लगी दर्शिका । दिनरात किताबों से इन्हें फुर्सत नहीं मिलती । उस रोज क्या कह रही थी छबि कि अक्सर पढ़ने की धुन में यह भी भूल जाते हैं कि खाना खाया है या नहीं । सुना है, संसार में इनका बहुत नाम है, बड़े ही प्रसिद्ध विद्वान हैं । क्या ही विडम्बना है कि कहाँ तो ऐसे आदमी को ऐसी पत्नी मिलनी चाहिये थी जो और हर तरह इनकी साज-सम्हाल करती, कहाँ मिली हैं वह देवीजी, जिन्हें बनाव-सिंगार और घूमने से ही फुर्सत नहीं है ! कैसे देवता पुरुष हैं कि श्रीमती जी बिना कहे-सुने पराये मर्दों के साथ गायब हैं पर इनके चेहरे पर शिकन नहीं आई । दूसरा होता तो देवीजी को आटे-दाल का भाव मालूम हो जाता । सब चौकड़ी भूल जातीं ।

उधर रास्ते में सोचते जा रहे थे प्रोफेसर—यह है भारतीय नारी का आदर्श । मिस्टर रँगरेलियाँ मनाने गए हैं, पर कहीं विद्रोह का एक शब्द भी मुँह से नहीं निकला । बैठी राह देख रही है कि आजायें तो गरम ही खाना खिलावे । दूसरे देश की औरत होती ऐसे आदमी को ठोकर लगाकर चलती बनती । वह गधा राजीव इसके मूल्य को क्या समझेगा ! शुरू से ही वाचाल रहा है वह । कालेज में चटकीली मटकीली लड़कियों के पीछे पीछे घूमा करता था । वह तो चमक - दमक देखता है, उसे रत्न की क्या पहिचान ? उसके लिये तो इमिटेशन चाहिये । छबि और है क्या ? पर वह उसी पर लट्टू है । आज कल उस पर डोरे डाल रहा है । मेरी आँखों में पट्टी थोड़े ही बंधी है । लाख अध्ययन में लगा रहता हूँ, पर अन्धा थोड़े ही हूँ । विचार-शक्ति तो मुझ में इन

लोगों से अधिक ही है। देखने वाले कहते होंगे, अजीब आदमी है यह प्रोफेसर। पत्नी दूसरे के चंगुल में फंसी जा रही है और इसके कान पर जूं तक नहीं रेंगती। लेकिन मैं क्या करूँ? मैं और लोगों की भाँति इनकी गर्दन नापूँ। एकाध को ठंडा कर दूँ और खुद भी फाँसी पर लटक जाऊँ? मेरी जान तो इतनी सस्ती है नहीं। मेरे जीवन का उद्देश्य महान है, मुझे संसार के लिये कुछ करके जाना है। इन तुच्छ बातों की ओर दृष्टिपात नहीं करूँगा।

× × × ×

प्रगतिशील समय अपने कार्य में रत रहा और उपर्युक्त रंग गाढ़े से गाढ़ा होता गया। अपनी दकियानूसी पत्नी के कारण दुखी राजीव छवि के अभावों की पूर्ति करने में अधिक से अधिक सचेष्ट रहने लगा। यदि वह छवि का सहायक बना था तो छवि ने भी उसके जीवन रूपी पतझड़ को बसन्त बनाने में सहायता दी थी। प्रारम्भ में वे एक दूसरे से केवल सहानुभूति रखते थे, पर मानसिक नैकट्य ने परस्पर आकर्षण पैदा किया। वे एक दूसरे के और निकट आए तो उन्हें मालूम हुआ कि उनके नये साथी में वही बात है जो वह चाहते थे, जिसके लिए वह व्याकुल थे। दोनों एक दूसरे के गुणों अथवा अवगुणों पर रीझे और घुलमिल गये। मानसिक आकर्षण और नैकट्य ने शारीरिक आकर्षण और नैकट्य के लिए मार्ग ढूंढ निकाला।

उधर प्रोफेसर अमृत और दर्शिका भी अपने साथियों के अभाव में स्वयं परित्यक्त से होकर एक दूसरे से अधिक से अधिक सहानुभूति रखने लगे थे। वे राजीव और छवि की भाँति उतना अधिक मिलते जुलते न थे, पर अभाव की प्रतिक्रिया जैसे किसी मानसिक लोक में उन्हें निकटतम बना रही थी। घूमने गई हुई छवि की

प्रतीक्षा करते-करते प्रोफेसर अमृत अक्सर सोचते—बेचारी दर्शिका भी मेरी ही भाँति उस दुष्ट राजीव की प्रतीक्षा कर रही होगी। कदाचित यही सोच रही होगी कि जल्दी आजायें तो वह उन्हें गरम भोजन खिलाने का सन्तोष प्राप्त कर सके। क्या जिंदगी है बेचारी की, अनाड़ी के हाथ पड़ा हीरा मट्टी मोल जा रहा है! कभी कभी तो वह यहाँ तक सोच जाते—दर्शिक तो मुझे मिली होती!

राजीव की प्रतीक्षा में बैठी दर्शिका सोचती—वहाँ वे दोनों आनन्द कर रहे होंगे, यहाँ हम दोनों कुढ़ रहे हैं। बेचारे प्रोफेसर! कितने भले आदमी हैं, जैसे देवता। पत्नी कैसी कुलटा मिली है! और कहीं से उनके दिमाग में बात आ जाती—मुझे यदि प्रोफेसर पति-रूप में मिले होते तो क्या बात थी? फिर ऐसी बात मन में आने के लिये वह अपने आपको धिक्कारने लगती। यह मुझे हो क्या गया है? मैं अपने आदर्श से गिर रही हूँ। कभी सोचती—मैं तो दिन-रात अब प्रोफेसर के ही विषय में सोचा करती हूँ, पर और सोचूँ भी किसके विषय में? लेकिन क्या प्रोफेसर भी कभी मेरे विषय में सोचते होंगे? अपने मन को बार बार रोकना चाहती, बार बार वह प्राचीन आदर्शों की दुहाई देती, पर घोर यथार्थ उसे विवश किये हुए था।

× × × ×

चांदनी रात में नाव पर सैर करते हुए छवि ने राजीव की छाती में अपना मुँह छिपाते हुए कहा—'एक खुश-खबरी तुम्हें सुनाऊँ?'

'हाँ हाँ।' राजीव ने उसके केशों में अपनी उँगलियाँ फिराते हुए कहा।

'मैं माँ बनने जा रही हूँ।'

बासरु—

राजीव को जैसे एक धक्का लगा, फिर भी उसने अपने मनोभाव को छिपाने का प्रयत्न करते हुए कहा—'तो तुमको और प्रोफेसर को बधाई।'

'उस गरीब को क्यों बीच में घसीटते हो? उसने तो साल भर से अधिक हो गया मेरे शरीर का स्पर्श तक नहीं किया। यह तुम्हारी ही शरारत है।'

'यह तो बुरा हुआ'—राजीव ने अप्रतिभ होकर कहा।

'बुरा नहीं, अच्छा ही हुआ'—दृढ़ स्वर में छवि बोली, 'यह हम लोग जो ऊंट की चोरी खाले खाले कर रहे थे वह आखिर एक न एक दिन खुलती ही, अब खुल गई। अब हमें इस मामले में फैसला कर डालना होगा।'

'लेकिन फैसला आखिर होगा क्या?'

'तुम मुझे पहले यह बतला दो राजीव, कि तुम आनन्द के ही साथी तो नहीं थे?'

'इतना नीच मुझे न समझो छवि, मैं चाहता तो यही हूँ फिर एक बार जब तुम्हारे जीवन में आया हूँ तो अब इससे बाहर न जाऊँ। परन्तु मेरी अक्ल काम नहीं कर रही है। मैं अब भी तुम्हारे चरणों पर अपनी नौकरी, सारी प्रसिद्ध और सब सम्पत्ति छोड़ कर जहाँ तुम चलना चाहो तुम्हें लेकर चलने को तैयार हूँ।'

'बस आ गए अपनी जात पर? मुझसे भागने को कहते हो, मुँह छिपाने को कहते हो? आखिर क्यों? ऐसा मैंने क्या किया है? मेरी मर्जी के खिलाफ मुझे अगर मेरे लाख विरोध करने पर भी किसी अनचाहे पर मनुष्य के गले बाँध दिया गया और मैंने सहारा पाते

—तरेसठ

ही उसे त्याग कर किसी अधिक उपयुक्त को अपना लिया तो मेरा क्या दोष है ? मैं हर्गिज न मानूंगी, समाज के मुँह पर ही मैं उसकी इस विषैली जड़ पर कुठारा घात करके उसे अपनी गलती सुधारने का सबक दूंगी। मैं प्रोफेसर को त्याग करके तुम्हारी पत्नी बनूंगी,' दृढ़तापूर्वक छवि ने कहा।

'और दर्शिका का क्या होगा ?'—दबी जबान से राजीव ने पूछा वह छवि के तेज के सामने अप्रतिभ हो गया था।

'तुम्हें उसे त्यागना होगा।'—एक एक शब्द को जैसे फौलाद का बनाते हुये छवि ने कहा।

'लेकिन आखिर उसकी किस गलती पर ?' राजीव के अन्दर का देवता बोला।

'इस गलती पर कि वह तुम्हारे योग्य नहीं है, तुम्हारी रुचि के अनुकूल नहीं है, तुम्हारे मन को नहीं भाती है। आज तुम उसकी गलती मुझ से पूछते हो, कल तक उसके विचारों के बेहूदे होने की शिकायतें करते तुम्हारा पेट न भरता था। अब सब भूल गये सुनलो राजीव हमें अपने समाज को यह समझा देना पड़ेगा कि मानसिक सम्बन्ध के सम्मुख शारीरिक क्या अन्य कोई भी सम्बन्ध गौण है। तो कल हम लोग अमृत से बात करेंगे।'

'अच्छा।'

× × × ×

'मुझ अभागे की कैसे याद आ गई आप लोगों को, जो बुलाने का कष्ट किया,'—कहते हुये प्रोफेसर अमृत ने राजीव के ड्राइङ्ग रूम में प्रवेश किया। 'अच्छा, यहाँ तो मिसेज राजीव भी दिखलाई दे रही हैं,'—दर्शिका को भी वहाँ देखकर उन्होंने कहा।

'नमस्ते प्रोफेसर साहब।'

'नमस्ते, नमस्ते ! क्या मामला है राजीव। यह कैसा आयोजन है ?'

बैठो अमृत ! सब मालूम हुआ जाता है। हम लोग तुमसे कुछ महत्वपूर्ण बातें करना चाहते हैं'—राजीव ने कहा।

'बहुत अच्छा' पहले जरा मैं हम लोग शब्द की परिभाषा जानना चाहूँगा।

'हम लोग से मतलब है, मैं और राजीव' छबि एक एक शब्द पर जोर देते हुए बोली।

'बहुत खूब बहुत खूब।' अमृत ने कहा।

'मैं देख रही हूँ कि अपने स्वभाव के विरुद्ध तुम इस समय बहुत मजाक के 'मूड' में हो और हम लोग हैं काफी गम्भीर। अच्छा होता जो तुम हम लोगों की बातें गम्भीरता पूर्वक सुनते और उनका उसी प्रकार उत्तर देते।'

'अच्छी बात है, मैं तैयार हूँ।''

'तो सुनो अमृत,'—छबि बोली, 'मैं माँ बनने जा रही हूँ।'

'शाबाश ! शाबाश !' अमृत ने कहा—'कांग्रेचुलेशंस' राजीव !'

दर्शिका को छबि की बात सुनकर आश्चर्य तो न हुआ, पर वह यह जरूर सोचती रही कि इन शब्दों को वह स्त्री मुंह से कैसे निकाल सकी; राजीव कुछ संकुचित सा हो गया।

छबि ने जरा भी अप्रतिभ हुए बिना कहा—'तुम यह न समझो कि मैं तुम्हें घसीटूंगी। राजीव अपने उत्तरदायित्व का बोझ सम्हालने को तैयार है।'

'यानी ?'

'मैं तुम्हें छोड़कर राजीव की पत्नी बनूंगी।'

दर्शिका का दिल धड़-धड़ धड़कने लगा।

'और दर्शिका को सपत्नी रूप में स्वीकार करोगी ?' अमृत ने प्रश्न किया।

दर्शिका के हृदय ने जैसे उछल कर बाहर निकला जाना चाहा।

'मैं उसे त्याग दूंगा'—राजीव बोला। वह अब तक कुछ संयत हो चुका था।

दर्शिका सोफे पर जैसी की तैसी बैठी रह गई। न हिली न डुली उसके हृदय पर एक बार हथौड़े की सी चोट हुई। मालूम हुआ जैसे दिल ने धड़कना बन्द कर दिया, पर उसकी बुद्धि ने जैसे उसे झकझोर कर कहा—इस आघात के लिए तो उसे तैयार रहना चाहिये था और और वह प्रयत्न करने लगी कि वह अविचलित दिखलाई दे।

'पर क्या कानूनन आप लोगों को यह अधिकार प्राप्त है ? हिन्दू ला इस विषय में क्या कहता है ? क्या आप लोग जानते हैं ?' अमृत ने पूछा।

मैं चाहूँगा कि दर्शिका भी अपने लिये पति चुन ले, राजीव ने कहा—'पर अगर वह न कर सके तो अपने अलग रहने का प्रबन्ध कर ले। वह गुजारे का रुपया मुझ से पा जाया करेगी।'

'और प्रोफेसर, मैं तुमसे कहूँगी,—छवि बोली, 'कि जिसके मन को तुम अपने मन से न बाँध सके उस पर कानूनन जबर्दस्ती अधिकार जमा कर ही तुम क्या करोगे ? न तुम स्वयं ही सुखी रह सकोगे। और न उसी को बना सकोगे।'

'नहीं, मैं ऐसा न करूँगा। मैं तुम्हें अनुमति दूंगा कि तुम राजीव के साथ जाकर उसके हृदय और घर को आबाद कर सको, और साथ

ही यह शुभ कामना भी करूँगा कि तुम्हें पुनः परिवर्तन की आवश्यकता न पड़े।'

'धन्यवाद,' छवि बोली।

'दर्शिका जी; आपने क्या सोचा ?' प्रोफेसर ने उसकी ओर मुखातिब होते हुए कहा।

'प्रोफेसर साहब, मैं जबर्दस्ती किसी से रोटी-कपड़ा लेना या उसकी दया पर निर्भर रहना बहुत ही निकृष्ट कर्म समझती हूँ। मैं जहर खालूंगी पर यह न करूँगी। मुश्किल यह है कि अब मैं इस घर में एक क्षण भी नहीं रहना चाहती, पर न मायके में ही कोई ऐसा बचा है जिसके पास जाकर दो दिन काट सकूँ--न ससुराल में ही। फिर भी कोई बात नहीं। धर्मशालाएं तो कहीं नहीं गयी हैं।'

'एक बात कहूँ, दर्शिका जी ? अगर देखा जाय तो समस्या लाख उलझ कर भी अपने आप ही सुलझ गई है। इन दोनों के एक हो जाने पर हम दोनों अकेले रह गए हैं। कहा जा सकता है कि हम दोनों पर संकट पड़ा है! क्यों न हम एक दूसरे के आड़े आयें, एक दूसरे के सहायक हो जायें।'

'किस रूप में ? क्या पति-पत्नी रूप में ? नहीं प्रोफेसर साहब, मुझसे यह न हो सकेगा। मेरी आत्मा मुझे खा जायगी। वह मुझे कभी क्षमा न कर सकेगी। मैं अपनी नजर में खुद गिर जाऊँगी। मुझे क्षमा करो प्रोफेसर।' दर्शिका बोली।

'पति-पत्नी के शारीरिक सम्बन्ध पर एकदम मेरा इस समय आग्रह नहीं है, दर्शिका। उसे शरीर की एक प्रबल भूख समझते हुए भी मैं उसे सब कुछ नहीं समझता। फिलहाल तो आपको किसी रक्षक की जरूरत है, जिसकी छाया में आप बसेरा कर सकें। उसके लिये मैं

—सरसट

प्रस्तुत हूँ। मुझे भी एक ऐसी सहायिका की आवश्यकता है जो मेरे कठिन परिश्रमयुक्त जीवन को अपने स्नेह-स्पर्श से थोड़ा कोमल बना सके। इसके लिए मैं आपकी सहायता का प्रार्थी हूँ। उस सहायिका को पत्नी की ही संज्ञा दी जाय, इसका भी मुझे कोई विशेष आग्रह नहीं। जहाँ तक शारीरिक सम्बन्ध की बात है, आपकी रुचि के विरुद्ध आप मुझे कभी किसी ओर अग्रसर होते न पायेंगी। वैसे यदि नारी और पुरुष के इस शाश्वत सम्बन्ध में आपकी सम्मति होगी तो मैं इसे अपना सौभाग्य ही समझूँगा।'

राजीव सोचता था—दर्शिका हर्गिज राजी न होगी, छवि प्रोफेसर से इतनी दुनियाँदारी की बातों की कभी कल्पना भी न कर सकती थी। वह आश्चर्यान्वित थी।

दर्शिका के मन में संघर्ष चल रहा था। आदर्श और यथार्थ की आँधियाँ सी आ जा रही थीं। निदान, यथार्थ ने आदर्श पर विजय पायी। वह सोचने लगी—'अब मैं हिचकिचा क्यों रही हूँ? मैं ही तो दिन भर प्रोफेसर का ध्यान किया करती थी, यह कामना किया करती थी कि ऐसा देवता स्वरूप पति मुझे मिला होता तो मैं अपने जीवन को धन्य समझती, ऐसी सेवा करती कि...! और आज जब वह हाथ पसारे खड़ा है तो मैं पीछे हट रही हूँ। वे आदर्श ही मेरे जीवन को क्या बना सके? मैं अब जगद्धर्म पर विश्वास करूँगी।'

'प्रोफेसर, मुझे स्वीकार है,' दर्शिका ने कहा।

छवि और राजीव कमरे में बैठे रह गए। दर्शिका अमृत के साथ उसके बँगले की ओर जा रही थी।

# नारी का विक्षोभ

रांगेय राघव

'अभी चार-पांच साल की ही बात है,' कल्ला ने अपने चश्मे को उतार कर साफ करते हुए कहा—'मैं तब लखनऊ यूनिवर्सिटी में पढ़ता था। आप तो जानते ही हैं कि लखनऊ में कैसी बहार रहती है।'

बीच में ही सिद्दी बोल पड़ा—'ओह, बला की ठंड है। चंदू ज़रा यार, ढंग से बैठो! कोई खुदगर्जी की हद है कि सारा कम्बल अपने चारों तरफ लपेटे बैठे हो। भाई, वाह!'

'अमाँ, तो बिगड़ते क्यों हो? आखिर कोई बात भी हो?' फिर मुड़कर चंदू ने कहा—'हाँ, भाई कल्लाजी, फिर?'

कल्ला ने अपने दुशाले को और अच्छी तरह लपेट लिया। फिर कहा—'लखनऊ की जिंदगी के तीन पहलू हैं, एक नवाबों का, दूसरा टुटपूँजियों का, और तीसरा ग़रीबों का। क्या बतायें, यार, हमारा समाज ही कुछ...।'

'खबरदार!' सिद्दी ने जोर से डाँटकर कहा— 'कह दिया है, बको मत!'

और चंदू ने अपने मटरगश्ती वाले लहजे से कहा—'हाँ, भई कल्लाजी, फिर?'

कल्ला फिर कहने लगा—'देखो, यार, यह बोलने नहीं देता!'

चंदू ने सिद्दी की ओर देखकर कहा—'खामोश!'

—उनसर

कल्ला ने कहना शुरू किया—'जवानी किस पर नहीं आती, मगर जो उस पर आई, वैसी शायद हमने कभी नहीं देखी। मेरे साथ एक लड़का सूरज पढ़ता था।। जाति का वह कायस्थ था, पर था एक लफंगा। लफंगा से तुम लोग कुछ-का कुछ न समझ लेना। भाई, वक्त ऐसा है कि कालेज के लड़के चाहते हैं कि उनकी गिनती उस्तादों में हो। नेकटाई, सूट, चमचमाते जूते, कालेज में कोई कुछ पहन ले, पर बातें करने तक का जिसे सलीका नहीं, वह किसी काम का नहीं।

'सूरज की आँखें सदा लड़कियों की ही खोज में रहती थीं।

'संयोग की बात है, कल्ला ने आगे कहा—'एक लड़की सविता को देखकर सूरज पागल हो गया।

'सूरज के बाप नहीं थे, मां नहीं थी। हाँ, गाँव में उसके चाचा थे; चाची थीं। उनके बाल-बच्चे थे। और सबसे बड़ी एक और बात थी। चाचा जमीदारी का इन्तजाम करते थे। सूरज उनका कहना मानने वाला लड़का था। लेकिन कानून की नजर से चाचा सूरज के चाचा हों, या सिकंदर के चाचा हों, जायदाद का वह कुछ नहीं कर सकते थे, क्योंकि वही जायदाद का मालिक था।

'इस गारंटी के होते हुये सूरज को किस बात की चिन्ता होती !

'सविता देखने में जितनी सुन्दर थीं, उतनी ही चतुर भी थी। सबसे बड़ी बात उसमें यह थी कि वह कालेज की डिबेटों में खूब हिस्सा लिया करती थी। जब वह बोलना शुरू करती, तो कोई कहता, 'इसका बाप भी ऐसी बातें नहीं सोच सकता ! जरूर कोई उस्ताद है इसके पीछे, जो प्रेम के कारण अपने आपको छिपाकर इसे आगे बढ़ा रहा है।' लेकिन इन बातों से होता जाता कुछ नहीं। अगर मान लिया जाय कि वह रट कर ही आती थी, तो रटने की भी एक हद हुआ करती है।

आज तक हमने नहीं देखा कि 'चन्द्रकान्ता सन्तति' के चौबीसों हिस्से किसी की जबान पर रखे हों। वह बोलने में एक भी भूल नहीं करती।

'उसके खयाल एकदम आजाद थे। विधवा विवाह, तलाक, सहशिक्षा स्त्री का नौकरी करना, गोया जिन्दगी के जिस पहलू में नारी की जो बात है, वह सविता की ही थी। हर बात पर उसके अपने अलग विचार थे।

नये विचारों की वह लड़की शाम को लड़कों के साथ घूमने निकलती, पार्टियों में जाती, कविता लिखती। कविता का मजाक शायद आप लोगों को मालूम नहीं। कोई आप की तरफ आँखें उठाकर देखता तक नहीं तो बस, कविता लिखिये!

'सूरज ने जब सुना कि वह कविता करती है, तब दौड़े-दौड़े उस्ताद हाशिम के पास गया। उस्ताद ने उसे देखा, तो सब-कुछ समझ गये। उनके लिए क्या बड़ी बात थी? कालेज का लड़का चटकदार कपड़े पहने उनके पास आया है। चेहरा गुल्ला नूर है, मतलब आँखों में वह खुशी नहीं, वह उत्साह नहीं, जो जवानी का अपना लक्षण है; तो आखिर इसका कारण है, उस्ताद बिना पूछे ही भांप गये। उस्ताद ने मुस्करा कर पीठ ठोंकी। कहा—'बेटा शाबाश! मगर मैं एक गजल के बारह आने से कम नहीं लेता। हुलिया बताओ, जो टूटा-फूटा ख्याल हो, उगल जाओ, आला जबान में तरकीब से सजी हुई वह चीज दे दूँगा कि जिसके लिये वह होगी, वह तो रीझेगा ही, इधर-उधर बैठे हुए भी दो-चार अपने आप रीझ जायेंगे।'

'एक पाँच रुपये का नोट काफी था। सूरज लौटे तो गुनगुनाते हुये। मुझे खुद ताज्जुब हुआ। चार बजे गया था, तब एक शरीफ आदमी था; अब सिर्फ छः बजे हैं, मगर शायर हो गये हैं।

—इकहत्तर

'आप शायद पूछेंगे कि सविता तो करती है कविता हिन्दी में और सूरज साहब करते हैं शायरी उर्दू में, ऐसा क्यों ? तो सुन लीजिये कि कायस्थों में अधिकतर मर्द हिन्दी नहीं पढ़ते, औरतें पढ़ती हैं।

'सविता भी कायस्थ थी। उसके एक छोटी बहन, एक छोटा भाई और एक बड़े भाई थे। बड़े भाई लॉ में पढ़ते थे। इरादा था छूटते ही वकालत शुरू करने का।

'सविता अन्धी न थी। उसे सूरज की बातें मालूम हो गई थीं, लेकिन न जाने क्यों वह उसे एकदम टाले रही।

'सूरज सविता को गुजरते देखता, तो गजल पढ़ता। जब उसका कोई नतीजा नहीं निकलता, तो कहता, खुदा समझे उस कमबख्त हाशिम से ! ऐसे हँसकर चली जाती है, जैसे हम सिर्फ गजल पढ़ रहे हों।

'किन्तु प्रेम की कोई बात स्थिर नहीं है। उसके अनजाने के बंधन किसी भी वक्त जंग बन कर कठोर से कठोर लोहे को भी चाट जा सकते हैं। दोनों ओर एक-सी परिस्थिति है। दोनों ओर ही एक सूनापन है। आप कहें यह बेवकूफी की इन्तहा है। मैं कहूँगा असली प्रेम वही है, जिसे दुनिया बेवकूफी समझे, क्योंकि बेवकूफी वही है...''

चन्दू ने टोककर कहा—'हम समझ रहे हैं !'

कल्ला ने सिर को एक बार हिला कर कहा—'समझ रहे हैं, तो बताइये क्या हुआ ?'

सिद्दी ने कहा—'नहीं, आप ही बताइये !'

कल्ला मुस्कराया। कहने लगा—'तो हुआ वही जो होना था।'

'यानी ?' सिद्दी ने चौंककर पूछा।

'एक दिन' कल्ला ने कहा—'सविता के बड़े भाई मेरे पास आये। कहा, 'आप सूरज के गहरे दोस्तों में से हैं न ?'

मैंने कहा—'जी हाँ फर्माइये ?'

वह कुछ सोचते हुए बोले—'कैसा लड़का है ?'

'इसके बाद सोरों के पंडों की तरह मुझे सूरज के सात पुश्तों के नाम गिनाने पड़े। घर की हालत बतानी पड़ी।'

'भाई साहब ने बताया कि उन्होंने कुछ उड़ती हुई उनके प्रेम की कहानियाँ सुनी हैं। मैंने कहा—'जी, वह सिर्फ कहानियाँ ही नहीं हैं।'

'मेरी तरफ गौर से देख कर भाई साहब मुस्कराये। कहा—'खैर! मैं औरतों की पूरी आजादी का कायल हूँ। मेरी बहन ही सही, मगर जब मैं खुद चाहता हूँ कि कोई पसंद की शादी करूँ, तो मेरा फर्ज है कि उन्हें पूरी मदद दूँ।'

'अब मेरी भी सविता से जान पहचान हो गई। हमारी जो मामी हैं, उनके भाई की बहन सविता की भाभी होने वाली थी। मगर अचानक उसके गुजर जाने की वजह से वह शादी न हो सकी।'

सिद्दी ने जम्हाई लेकर कहा—'बड़ा लम्बा किस्सा है!'

'लीजिए, साहब कल्ला ने चिढ़ कर कहा—'शादी हो गई सूरज और सविता की। छोटा हो गया अब ?'

भाई तुम्हारे मुँह में घी-शक्कर!' चंदू ने सिग्रेट पेश करते हुए कहा—'सिनेमा का-सा लुफ्त आ रहा है।' सिद्दी ने कहा—'फिर ?'

कल्ला ने एक लम्बा कश खींचा, और धुँआ छत की तरफ छोड़ कर फिर कहना शुरू किया—'उसके बाद एक दिन की बात है। सूरज मैं और मेरा एक और दोस्त चंद्रकान्त, कालेज में घूम रहे थे। सविता की कालेज की पढ़ाई जारी थी। अब भी वह अपने भाई के यहाँ ही रहती थी, सूरज के यहाँ नहीं। शादी के तीन चार महीने बीत चुके थे।

'शादी हो जाने से तमीज आ जाती है, यह हमने जरा कम देखा है। सूरज की आदतें बदस्तूर कायम रहीं। किंतु इस बीच में यह जरूर हुआ कि मेरा सविता के यहाँ आना जाना काफी बढ़ गया।'

'चंद्रकान्त मुँह का बक्की था, लेकिन दिल का बिलकुल पक्का। सौ लड़कियों को देख कर दो सौ तरह की बोलियाँ निकाल सकता था, मगर वह जहर उसके दिल में नहीं था। सिर्फ गले के ऊपरी हिस्से में ही था।'

'उस दिन चंद्रकांत ने लड़कियों की एक भीड़ देख मुस्कराकर कहा—'देख यार, कल्ला! कभी-कभी तो देख लिया कर!'

'लेकिन हम चूंकि जरा ऊँचे खयालों के आदमी हैं, इन बदतमीजियों में हमारा दिल, आपकी कसम, बिलकुल नहीं लगता।'

'जिस लड़की की नीली साड़ी थी, वह चंद्रकांत की पुरानी जान पहचान की थी। चंद्रकांत ने हाथ से इशारा करते हुये मुझसे कहा—'देखा?'

'मैंने देखा, और बिलकुल चुप। लड़की की पीठ मेरी ओर थी। झट से लाइब्रेरी में घुस गई। सूरज अपने ध्यान में मग्न पहचान नहीं पाया उसे। झट से चंद्रकांत का हाथ पकड़ कर बोल उठा—'चलो, जरा देखें तो हातिमताई की हिरोइन बनने लायक है या नहीं!'

'पहचान तो मैं गया था कि वह कौन है, फिर भी चाहता था कि सूरज को आज एक ऐसी नसीहत मिल जाय, जिसे वह जिन्दगी भर याद करे।'

'लड़की की पीठ ही फिर नजर आई। सूरज ने दबी आवाज से कहा—'काश, हमें भी दीदार हो जाता!'

'लड़की ने मुड़कर देखा। सूरज के काटो, तो खून नहीं। वह सविता थी। उसकी त्योरियाँ पहले तो चढ़ी, लेकिन जब सूरज को पहचान लिया, तब न जाने क्यों उसे हँसी आ गई। भला बताइये, कोई स्त्री अपने ही पति को इस हालत में देखे, तो उसे कोफ्त तो होगी ही, लेकिन हँसी न आ जाये उसे, यह नामुमकिन है। रेल में कोई आपकी जेब काटे और आप जेबकट को पकड़ कर देखें कि वह तो आप का ही छोटा भाई है, तो हँस कर ही डाँटियेगा, या पुलिस के हवाले कर दीजियेगा ?'

'हम तीनों लौट आये। चंद्रकांत को मालूम नहीं था कि सूरज सविता का पति है। उसने कहा—'देखा आपने ? है मुझमें कुछ अक्ल ? पूरी भीड़ में ले जाकर किसके आगे खड़ा कर दिया आप-को ? जनाब जेब में पैसा चाहिये, बस फतह है !'

'सूरज मेरी तरफ देख रहा था। मैं अब चंद्रकांत को चुप होने का इशारा भी नहीं कर सकता था। वह बकता गया, 'सारा कालेज जानता है कि आज से दो साल पहले जब यह लड़की आई० टी० में थी, तब से मास्टर से दोस्ताना था। मास्टर आदमी काबिल था। पढ़ाई में तेज, हाकी खेलने में नम्बर वन, और हिन्दुस्तान में चुनाव और प्रेम में कमाल कर दिखाने वाली चीज भी उसके पास थी, मेरा मतलब मोटर से है। यह दिन-रात उसके साथ मोटर में घूमा करती थी। भाई हैं इसके अपने अलग मस्त।'

'कमबख्त बके जा रहा था। सूरज का सिर झुक गया। मैंने धीरे से इशारा किया कि चुप रह। मगर उसने समझा कि सूरज पर उस लड़की का प्रेम भूत बन कर सवार होने लगा है। उसने कहा—'अमां छोड़ो भी, ऐसी लड़कियों से तो दूर ही रहा जाय, तो

अच्छा ! यह हिन्दुस्तान है, हिन्दुस्तान ! जब अपनी देशी सरकार बनेगी, तो इन अधगोरों का क्या हाल होगा, यह पंडित नेहरू भी नहीं बता सकते। जाने दो, यार ! समझदार आदमी हो। क्यों तुम प्रेम-वेम के चक्कर में फसना चाहते हो ?'

'रात आगई थी। सूरज बैठा सिग्रेट फूँके जा रहा था। उसके चहरे पर उदासी छायी थी। वह किसी घोर चिन्ता में पड़ गया था। देर के बाद उसने कहा—'कल्ला, चाचा को मालूम होगा यह सब, तो क्या कहेंगे ?'

'मैंने सुना, और सोचकर कहा— 'क्यों, क्या चंद्रकांत को तुम्हारे चाचा का पता मालूम है ?'

'नहीं तो।'

'तो फिर उन्हें कैसे मालूम होगा? मैं तो कहने से रहा। और सविता भी क्यों कहने लगी। अब आप ही अगर इतने अक्लमन्द हों, तो मैं लाचार हूँ। कम-से-कम भई, मैं तो इसमें कुछ नहीं कर सकता।'

सूरज ने कहा—'और तो कुछ नहीं, लेकिन मुझे एक बात कचोट उठती है। जाते वक्त चंद्रकांत ने कहा था कि जिस आदमी से इस लड़की से शादी होगी, वह भी एक ही काठ का उल्लू होगा।'

'गनीमत है,' मैंने दिल में कहा।

'एक काम करोगे ?' सूरज ने कहा।

'मैंने पूछा—'क्या ?'

'सविता से मैं एकान्त में मिलना चाहता हूँ। उसे कल यहाँ ले आओगे ?'

'मैंने कहा—बेखुश ! यह क्या मुश्किल है ?'

'सूरज ने एक लम्बी साँस को जैसे लाल किले से रिहा किया । मैंने कहा—'कल शाम को जाऊंगा, उसके यहाँ ।'

'सूरज खुश नजर आता था । दूसरे दिन जब शाम को मैं उसके कमरे में घुसा, तो उसने हर्ष से मेरे कंधों को पकड़ कर कहा—'क्या कहा सविता ने ?'

'मुझे मन ही मन हँसी आई । कानून की निगाह से, धर्म की रू से, समाज के नियम से वही उस औरत का देवता है । मगर बात ऐसी करता है, जैसे शादी के पहले का प्रेम हो रहा है ।

'मैंने कहा—'बात जरा गौर करने की है । बैठ जाओ, तब कहूँगा ।'

सूरज ने बैठ कर सिगरेट सुलगा ली ।

मैंने कहा—'मैं गया था उसके पास । उसने कहा—ऐसे कैसे मिल सकती हूँ ? अभी तो हमारा गौना भी नहीं हुआ ।'

'सूरज ने तड़प कर कहा—मुझ से मिलने के लिए गौने की जरूरत है । मास्टर से मिलने को तो किसी की जरूरत नहीं थी ? 'कैसे कैसे आदमी हैं इस दुनिया में ?'

मैंने कहा—'मास्टर से सिर्फ मिलना-जुलना था । तुम्हारे यहाँ आने का मतलब स्पष्ट है । जमाना हँसेगा ।'

'और तब न हँसता था ?' सूरज ने मुझे घूरते हुये पूछा ।

मैंने कहा—'खूब हो, यार तुम भी ! हकीकत से दुनिया डरती है । अपना मन ही साफ न हो, तो तिनका भी पहाड़ नजर आता है ।'

'लेकिन सूरज की समझ में न आना था न आया। उसने मेज पर मुट्ठी मार कर कहा—'तो एक महीने के अन्दर देख लेना!'

मुझे फिर हँसी आई, जैसे वह कोई कमाल कर रहा हो।

'लिख दिया सूरज ने अपने चाचा को। इजाजत लेना तो क्या एक तरह से इत्तला देनी थी। काम हो गया।'

'महीने भर बाद गौना हो गया। सविता उसके घर में आई। अब सूरज कभी-कभी मुझे भीघूरने लगा, क्योंकि मैं बार-बार सविता की तरफदारी करता था। कहा कुछ नहीं। थोड़े दिन तक जिंदगी ऐसे चली, जैसे चाय और दूध। लेकिन मैं अखिर कब तक चीनी बन कर स्वाद रखता?'

एक दिन दबी जबान से सूरज ने सविता से उसके पहले जीवन के बारे में प्रश्न किया।

सविता ने कहा—'आप ऐसी बातें करते हैं? मुझे सचमुच बड़ा ताज्जुब होता है। आप लोग जो कुछ करते हैं, हम लोग तो उसका पाँच फीसदी भी नहीं कर पाते।'

सूरज मन-ही-मन कुढ़ गया। उसके हृदय में पुरुषत्व की वह जायदाद की मिलकियत वाली बात, जो उसमें कूट-कूट कर सदियों से भरी हुई थी, भीतर-ही-भीतर चोट खाये साँप की तरह फुंकार उठी। स्त्री पुरुष की क्या बराबरी? वेद में जिक्र है, यज्ञ के खम्भे में अनेक रस्सियाँ बाँधी जा सकती हैं। हाँ, एक रस्सी से दो खम्भे नहीं बाँधे जा सकते - सूरज चुप हो रहा। मास्टर से सविता का क्या संबन्ध था, इस पर कोई प्रकाश नहीं डाला गया। वह जो अँधेरा था, उसमें भीतर का अविश्वास नफरत का भयानक भेड़िया बन कर इधर-उधर घूमने लगा कि कब शिकार की आँखें जरा झपकें, और कब वह झपट कर अपने

दाँतों की नोकों को उसके गले में गड़ा दे, और उसके शरीर को नोंच-नोंच कर तीखे नाखूनों से फाड़ डाले।

'सीधी-सादी बात थी। अगर सूरज पूछ लेता, तो बात वहीं की वहीं साफ़ हो सकती थी। लेकिन अपना पाप ही तो समस्त निर्बलता की जड़ है।

सविता ने कहा—'आप मुझ पर अगर शुरू से ही भरोसा नहीं करेंगे, और बाहर वालों की बातों का ही यकीन करेंगे, तो न जाने आगे क्या हाल होगा। माना कि आप मुझे अपनी बात पूरी तरह कहने का अवसर देंगे, तो भी क्या यह जरूरी है कि जो मैं कहूँ, आप उसे सच ही मानेंगे! ज़ाहिर ही है कि कोई अपने मुँह से अपनी बुराई नहीं करता। तो स्त्री होने के नाते जब आप मुझ पर किसी तरह भी विश्वास नहीं कर सकते, तो मैं अपने आप चुप हो रहूँ, यह बहतर है।' फिर तनिक रुक कर कहा—'आपने तो कहा था कि आप मुझे किसी तरह भी अपना गुलाम नहीं बनायेंगे। पर मैं देखती हूँ, शादी के पहले जो आपने अपने खयालों की जो आज़ादी दिखाई थी, वह सब झूठ थी।'

सूरज उस समय तो हंसकर टाल गया। उसी शाम को उसके लिये एक नई साड़ी भी लाया। सविता ने पहले तो प्रसन्नता दिखाई, फिर उसने कहा—'इस महँगी में इसकी क्या जरूरत थी?'

'तो क्या हो गया?' सूरज ने प्रसन्न होकर कहा—'पच्चीस जगह उठना-बैठना होता है।'

सविता ने उदास होकर पूछा—'आप मेरी दिन की बातों का बुरा तो नहीं मान गये?'

'सूरज ने आँखें झुका लीं। तीर मर्म पर जाकर गड़ गया था।

—इनासी

सविता ने कहा—'आप मेरी बातों का बुरा न माना कीजिये। मुझे बचपन से ही ऐसे बक-बक करने की आदत पड़ गई है, क्योंकि माँ-बाप तो रहे नहीं, जो तमीज सिखाते। लेकिन एक बात का मैंने पक्का इरादा कर लिया है अब। काम वही करूँगी, जिसमें आप खुश हों। स्त्री के विचार वही होने चाहिये, जो उसके पति के होते हैं। आप मुझे माफ कीजिये।' कहकर वह रो पड़ी।

सूरज ने स्नेह से उसके आँसू पोंछ कर कहा—'तो रोती क्यों हो? छिः!'

'वह चुप हो गई।'

सूरज ने मुझसे जब ये बातें कहीं, तो मैंने कहा—'यह है हिन्दुस्तान! इसे कहते हैं हार?'

एक जंगल का आजाद परिंदा पिंजरे में पड़कर सोच रहा है कि पिंजरा ही जीवन का सबसे बड़ा स्वर्ग है!'

' 'हूँ!' सूरज ने मेरी ओर तीक्ष्ण दृष्टि से देखा और कहा—'अभी अकेले हो न! जब तुम्हारी बारी आयगी, तब देखेंगे!'

मैंने कोई उत्तर नहीं दिया। बेकार बहस करने से फायदा? मैं चुप ही रहा। पर मुझे ऐसा लगा, जैसे अँधेरे में चलते-चलते किसी को एक-ब-एक यह ख्याल हो जाय कि उसका कोई पीछा कर रहा है, और धोखे से वार करके उसे मार देने की राह देख रहा है।'

सिद्दी ने चन्दू की ओर देखा। दोनों इस समय गम्भीर थे। कल्ला ने नई सिगरेट जला कर फिर कहना शुरू किया—आना-जाना पहले की तरह जारी रहा। तुम जानते हो, आदमी का दिल एक चट्टान की तरह है, जिसकी जड़ को शक की लहरें एक बार काटने में कुछ भी सफल

हो जाती हैं, तो एक न एक दिन ऐसा आता है, जब पूरी की-पूरी चट्टान लुढ़क जाती है।'

कालेज में सूरज ने मुझसे कहा—'यार आज तो शाम को गोमती में बोटिंग को चलेंगे। वहां से फिर सिनेमा। साढ़े चार बजे हमारे घर ही आ जाना।'

जब मैं उसके घर पहुंचा, तो सूरज नहीं लौटा था। सविता ने गोल कमरे में ले जा कर मुझे बैठाया, और जाकर स्टोव पर चाय के लिये पानी चढ़ा दिया।

आकर पूछा----'क्या खाते हैं आप ?'

मैंने कहा- -'सब कुछ खाता हूँ, बशर्ते की कोई खिलाये!'

हँस पड़ी वह। बोली---'खाने की तो ऐसी कोई पड़ी नहीं, पर उनका इन्तजार तो करेंगे न ?'

मैंने कुछ नहीं कहा।

'आते ही होंगे,' उसने मुस्करा कर कहा—'वक्त तो हो गया है। क्यों आज क्या कोई प्रोग्राम है ?'

मैंने कहा—'जी नहीं, बस शाम को नदी की सैर करने का विचार है। फिर सिनेमा...'

उसने बात काटकर कहा—'तो और क्या रातभर घूमना चाहते हैं ?' कह कर वह हँस दी। कहा—'आप जानते हैं, मैंने कालेज छोड़ दिया है।'

'जी, ऐसा क्यों ?' मुझे सचमुच मालूम नहीं था।

'उसने मुस्कराते हुए उत्तर दिया—'उनको मेरा कालेज जाना पसन्द नहीं। कहते थे, बी० ए० तो कर चुकी हो, एम० ए० करके क्या तुम्हें नौकरी करनी है ?'

—इक्यासी

'उसके स्वर में एक तीव्र वेदना थी, जो उसके मुस्कराने के प्रयत्न से और भी कठोर प्रतीत हुई। मुझे ऐसा लगा, जैसे खिलौने सामने फैला-कर कोई बच्चे से कह रहा हो, 'खबरदार, जो हाथ लगाया।'

मैंने विक्षुब्ध होकर कहा—'आपने सूरज से यह नहीं पूछा कि आपको बी० ए० तक पढ़ने की क्या जरूरत थी?'

'अब यह तो आप ही पूछिये! मुझसे तो इतनी ताब नहीं कि बार-बार उल्टी-सीधी बातें सुनूँ।'

'मैंने सुना। किन्तु मन का कौतूहल फिर भी जागा ही रहा। मैंने पूछा—'अच्छा, एक बात पूछता हूँ, माफ कीजियेगा बात जरा कड़ी है। आप कालेज में न होती, तो सूरज बाबू आपको कभी देख सकते थे? और जब यही नतीजा निकलना था, जो चाचा से कहकर किसी बिल्कुल पुराने ढङ्ग की लड़की से उन्होंने क्यों नहीं शादी की?'

मन तो बहुत कुछ बकने का था, लेकिन हठात चुप हो गया, क्योंकि उसी समय सूरज कमरे में आ दाखिल हुआ। उसका प्रवेश इतना आकस्मिक था कि एक बार हम दोनों ही चौंक उठे। सूरज की तेज आंखों ने इसे देख लिया।

'दूसरे दिन जब मैं सूरज के यहां गया, तो बाहर बरामदे में ही ठिठक गया। अन्दर से सूरज की आवाज आ रही थी, मेरी गैर-हाजिरी में अगर कोई भी आये, तो दरवाजा खोलने की तो क्या जवाब तक देने की जरूरत नहीं है।'

फिर सविता की आवाज सुनाई पड़ी। 'बहुत अच्छा! आपके चाचा आयें, तब भी?'

'उन्हें तो दूर करने की कोशिश करोगी ही! अजी बाहरी लोगों के लिये कहा है।'

'तो मैंने किस को बुलाया है ?'

'कल वह कौन आया था ?'

'मैंने बुलाया था कि आपने ? मैंने तो उल्टे आप पर एहसान किया कि आपके एक दोस्त की नजर में आपको गिरने नहीं दिया ।'

'मुझे इन एहसानों की जरूरत नहीं !' सूरज का स्वर दृढ़ था और कठोर भी ।

'आपकी जैसी मर्जी । मुझे किसी से क्या मतलब है ?'

'मैंने सुना । क्रोध से मेरी आत्मा छटपटा उठी । बाहर ही से लौट आया ।

'इसके बाद मैंने उसके घर आना-जाना बहुत कम कर दिया । इम्तहान आ गए ।' कह कर कल्ला चुप हो गया ।

'चुप क्यों हो गये ?' चन्दू ने चौंक कर पूछा ।

'सिगरेट !' माथे पर बल डालकर पूरी आँखें फाड़ते हुए कल्ला ने कहा—'जरा थक गया हूँ ।'

'तो हुजूर, मालिश ?'

'नो, थैंक्स ?'

सिगरेट जलाकर कल्ला ने कहा—'मुझे अपनी साइकिल वापिस मिल गई । जो लड़का मेरी साइकिल पहुँचाने आया...'

सिद्दी ने काटकर पूछा—'इसी बीच में साइकिल कहाँ से आ गई ?'

'यार मैं गढ़-गढ़ कर तो सुना नहीं रहा । अब जैसे-जैसे याद आता जायगा, मैं तुम्हें सुनाता जाऊँगा । कोई सबक तो आपको सुना नहीं रहा हूँ ।'—कल्ला बिगड़ कर बोल उठा ।

—तिरासी

'अच्छा, अच्छा!' चन्दू ने बीच में पड़ते हुए कहा—'तो साइकिल वाला लड़का?'

'हाँ,' कल्ला ने कहा—'उसके हाथ में एक खत था। खोल कर पढ़ा—

'प्रिय भाई,

अब हम गाँव जा रहे हैं। आपकी साइकिल वापिस भेज रही हूँ। धन्यवाद!

आपकी,
सविता।'

साइकिल उठा कर धर ली। मुझे मालूम हुआ कि साइकिल ही इस विद्वेष की जड़ थी।

मेरे एक दोस्त थे। साइकिलों की चोरी करना ही उनका रोजगार था। एक बार वह कानपुर से एक साइकिल चुराकर लाये। बोले—'बहुत दिन से सस्ती साइकिल मांगा करते थे। अब ले लो! मैंने कहा—'वाह, यार! गोया हम मर्द न हुए औरत हो गये, जो आप जनानी साइकिल लाकर एहसान जता रहे हैं! मांगी थी पतलून, लाये हैं साड़ी!'

'बोले—'भई, दिक न करो! हमें कुछ नहीं चाहिये, सिर्फ पंद्रह रुपये दे दो! फिर मामला तय होता रहेगा।'

चन्द्रकांत की भाभी आने वाली थी। उसने कहा—'अबे भाभी के काम आ जायगी। ले ले!'

'एक दिन कालेज में सविता मिली। बात चलने पर उसने कहा—'देखिये, घर हमारा है बहुत दूर। पैदल आते-आते दिवाला निकल जाता है।'

मैंने कहा—'आपको साइकिल तो दे सकता हूँ, पर कुछ ही दिन के लिये।'

'सविता प्रसन्न हुई।'

'अब वह साइकिल पर बैठकर कालेज जाने लगी।'

'एक दिन सविता ने मुझे कालेज में रोक लिया। पैर में पट्टी बंधी थी। लंगड़ा-लंगड़ा कर चल रही थी।

मैंने कहा—'यह क्या हुआ?'

'चोट लग गई।'

'तो अब तो ठीक है?'

'हाँ, एक तकलीफ दूँगी।'

'मैंने कहा—'फर्माइये।'

'एक ताँगा ला दीजिये!'

'क्यों, साइकिल क्या हुई?'

'वह मैं वापिस कर दूँगी।'

'क्यों?'

'कल वह आये थे हमारे घर। मैं लौट कर आई, तो भैया ने कहा—'सविता, यह साइकिल तू कहाँ से ले आई?' मैंने बताया। भैया ने कहा—'सूरज को मालूम है?' मैंने कहा, 'उनसे तो कभी मिलती नहीं।' भैया ने कहा, 'आज सूरज आया था। कहता था, चाचा आये थे, उन्होंने सविता को साइकिल पर बैठे देखा था।'

'मैं सुनता रहा। सविता सुनाती रही, 'चाचा ने बहुत बुरा माना था। भला कोई बात है कि भले घर की बहूबेटियाँ साइकिल पर घूमा करें!' भैया ने कहा –'सूरज बाबू कह गये हैं। सविता को साइकिल पर जाने से तो रोक ही दें।' मैंने भैया से कहा, 'आपने कहा नहीं कि कालेज दूर है।' 'कहा था,' भैया ने कहा, 'पर सूरज ने कहा कि यदि

यह बात है, तो पढ़ाई की ही ऐसी क्या जरूरत है ?' मुझे बहुत बुरा लगा। मैंने कहा, 'मैं तो साइकिल पर जरूर चढ़ूँगी।' तब भैया ने कहा, 'देखो, सविता, अब तुम बच्ची नहीं हो। शादी के बाद तुम्हें अपनी आँखें खोल कर चलना चाहिये! यह बचपना अब काम नहीं देगा।' कह कर सविता चुप हो गई। फिर कहा—'भिजवा दूँगी आपकी साइकिल!'

मैंने कहा—'सुना है, आपका......'

'जी, हाँ!' उसने लाज से सिर झुका कर कहा।

'मेरा इशारा उसके गौने की ओर था। वह ताँगे में चली गई।

'पत्र हाथ में ले कर मैंने सोचा, अब वे गाँव में होंगे। साइकिल लाने वाला लड़का खत देने के कई दिन बाद आया था। उसकी मेहर-बानी थी, कोई नौकर थोड़े ही था वह।'

'एक-एक कर चित्र मेरी आँखों में घूमने लगे। यही थी सविता की सूरज के प्रति उपेक्षा। उसकी आदर्शों की वास्तविकता देख कर धीरे-धीरे उसका मन भीतर-ही-भीतर कुढ़ता जा रहा था।'

'किन्तु यौवन फिर भी प्यासा होता है। समाज के जिस बंधन को हम विवाह कहते हैं, उसका कार्य-कारण रूप चाहे कैसा ही कठोर वास्तविकता, आवश्यकता क्यों न हो, किन्तु उसकी पृष्ठ-भूमि में मनुष्य-जीवन का वही संचित व्याकुल मोह है।'

मैं नहीं जानता कि यह कहते हुये मैं कहाँ तक ठीक हूँ कि मनुष्य के समस्त अन्वेषण, उसकी कला, उसके विज्ञान, युद्ध और जो कुछ भी उसकी हलचल है, उसके मूल में वही एक हाहाकार करती तृष्णा है, जिसे वह समवेदना, सहानुभूति और प्रेम की मृगतृष्णा समझ रहा है।

'सविता का जीवन उस तलवार की तरह था, जिसकी धार को कोई कायर योद्धा पत्थर पर मार कर तोड़ देना चाहता हो। उसमें इतना साहस नहीं है, जो वह उसे उठा कर उससे समाज की घृणित व्यवस्थाओं पर चोट करे, और उसके खून से उसकी धार चमका दे।'

'सविता की बहन कभी-कभी जब कालेज में मिलती, तो पूछती कि मुझे दीदी की कोई खबर मिली। मैं कह देता कि जब उसे ही कोई खबर नहीं मिली, तो भला मुझे कैसे कुछ ज्ञात हो।'

'अविश्वास की जिस तेज छुरी से सूरज के भय ने सारे सम्बन्धों को जड़ से काटना शुरू किया, वही उसके सुख को काट-काट कर लहू-लुहान करने लगी। मैं बहुधा सोचता कि क्या उनका जीवन अब सुधर गया होगा?'

इसके बाद एक शाम को मैं इलाहाबाद में गंगा के किनारे टहल रहा था। सूरज डूब रहा था। लाल-लाल किरणें पानी पर उतर कर ललाई फैला रही थीं। हवा में कुछ नमी आ गई थी।

एकाएक किसी ने आवाज दी—'मिस्टर कल्ला!'

'मैं एकदम चौंक गया, सोचा यहाँ कौन कमबख्त आ टपका? जान-पहचान वालों से मैं उतना ही चकराता हूँ, जितना सड़क पर बदतमीजी से भागती हुई भैंस को देख कर। मुड़ कर देखा, आँखों को विश्वास नहीं हुआ। सोच सकते हो, कौन था वह?'

सिद्दी और चन्दू ने सवालिया जुमला बनी भौंहों को उठा दिया।

'था कौन? वही सविता थी!'

'सविता?' दोनों ने आश्चर्य से कहा।

'जनाब! वह सविता ही थी।' कल्ला ने खाँस कर कहा—'देख कर मेरी आँखें फैल कर रह गईं। वह अकेली थी। उसके शरीर पर सादा

साड़ी और एक ब्लाउज़ था। माँग में सिंदूर नहीं था। माथे पर बिंदी ज़रूर थी। हाथों में चूड़ियाँ भी थीं। समझ में नहीं आया कि उस फ़ैशन की पुतली में यह सादगी कैसे आ गई।'

मेरे मुँह से सहसा निकला—'सविता देवी! आप यहाँ? अकेली?'

वह हँस दी। कहा—'क्यों, आप इलाहाबाद कब आये?'

'जी, मैं तो कल ही रिसर्च के सिलसिले में आया हूँ।'

'सामान कहाँ पड़ा है?'

'होटल में।'

'मेरे यहाँ ठहरने में आपको कोई एतराज तो न होगा?'

'मैंने कहा—'आप कहाँ ठहरी हैं?'

'मैं तो यहीं रहती हूँ।'

'इसके बाद हम लोग थोड़ी देर तक टहलते रहे। कुछ रिसर्च के बारे में बातें हुईं। मुझे विस्मय हुआ उसकी जानकारी की बातें सुन कर। पहले तो उसने कहा कि उसका वह विषय नहीं है, और उस पर बात करना उसके लिये एक अनधिकार चेष्टा है। पर, सच कहता हूँ, उसकी बातें सुन कर मेरी रूह काँप गई। मैं अपने खास विषय पर उस सफाई से बात नहीं कर सकता, जिस पर सविता सिर्फ़ अनधिकार चेष्टा मात्र कर रही थी। फिर सोचा, अच्छा ही है कि सविता का यह विषय ही नहीं, वर्ना मुझे सात जन्म में भी डॉक्टर बनना नसीब नहीं होता।'

अँधियारी घिरने लगी। सविता ने कहा—'तो चलिये, अब आपके होटल चलें। वहाँ से आपका सामान ले कर चलेंगे।'

मैंने कहा—'कहाँ चलियेगा?'

'घर,' उसने हँस कर कहा—'हँसिये नहीं। कुल एक कमरा है। उसे ही घर कह लीजिये, बंगला कह लीजिये, मेरे लिये काफी है। छोटी बहिन को लिखा था आने को, लिखा है उसने कि एक हफ्ते के भीतर ही आ जायेगी। मैंने तो भैया से भी कहा था कि प्रैक्टिस-वैक्टिस का खब्त छोड़ दें, और आकर यहीं कोई नौकरी कर लें। चलिये न!'

मैं लाचार हो गया। हम लोग चलने लगे।

सविता ने कहा—'एक वक्त था, जब घर की हालत बहुत अच्छी थी। मगर अब हालत ठीक नहीं रही।'

'मैं सोच में पड़ गया। पारिवारिक जीवन की जो झंझटें अधेड़ औरतों को हुआ करती हैं, वह आज सविता को खाये जा रही थीं। कल वह एक लड़की थी। लजाया करती थीं। आज उसकी बातों में एक बुजुर्गी थी, एक स्थिरता थी।

जब हम होटल में पहुँचे, तो काफी ठण्डी हवा चलने लगी थी। आसमान में कुछ बादल भी इकट्ठे होने लगे थे। एक ताँगे में सामान रखा। हम दोनों बैठ गये। सविता ने घर का रास्ता ताँगेवाले को समझा दिया, और फिर मुझ से बातें करने लगी। अब की उसने मेरे विवाह के पहलू पर बात शुरू कर दी।

उसकी बातों में कोई सिलसिला नहीं था। उसके मन में जैसे इतना कौतूहल था, इतनी समवेदना थी कि वह मेरे विषय में कुछ जान लेना चाहती थी।

घर पहुँच कर उसने बत्ती जला दी, और खाने का इंतजाम करने लगी। चूल्हे पर कुछ चढ़ाकर जब वह बाहर आई, तो उसमें और हिंदुस्तानी घरों की औरतों में कोई फर्क न था। कल वह शायद इन औरतों से नफरत करती थी।

—नवासी

'मैं बैठा-बैठा सिगरेट पीता रहा। सविता ने कहा—'कहाँ सोइ-येगा ? बरामदा तो है नहीं। छत पर तो शायद रात को आप भीग जायेंगे।'

'आप क्या कमरे में ही सोती हैं ?'

'जी, नहीं, जब गर्मी होती है, तो ऊपर सो रहती हूँ। चटाई बिछाई और बिस्तर लगा दिया।' फिर रुक कर बोली—'सच, आपसे मिलने की बड़ी इच्छा थी। आप ही तो एक हमदर्द थे मेरे उस जीवन में, जिससे सब घृणा करते थे, और वह सच्चा विश्वास सब की आँखों में व्यभिचार का पाप बन कर खटका करता था। अरे...मैं तो भूल ही गई। कहीं दाल उफन न गई हो।'

फिर वह उस छोटी सी रसोई में घुस गई। मैं कुछ-कुछ समझने लगा।

उसके बाद जब वह लौटी, तो मेरे सामने थाली धर दी। फिर अपने लिये खाने का सामान लगा लाई।

हम दोनों खाने लगे।

खाते-खाते हठात् उसने पूछा—'कैसा खाना बनाती हूँ ?'

मैंने कहा—'अच्छा तो है।'

धीरे से उसने कहा—'वह लोग कहते थे कि मैं खाना बनाना भी नहीं जानती हूँ !'

वह 'हूँ' मेरे कानों में सूई की तरह चुभ गई।

मैंने कहा—'कौन कहते थे ?'

'वे कहते थे, उसने कहा—'मैं तो मेम हूँ। बेवकूफ! वे क्या जानें कि मेम भी अपने कायदे से अपना खाना बनाना जानती हैं। फिर क्या खाना अच्छा बनाना औरतों के लिये जरूरी है ?'

मेरे मुँह से निकला—'फिलहाल है ही। वैसे तो बना लेना काफी है। उस्ताद तो खाना बनाने में औरत कभी नहीं रही। पाक तो दो ही प्रसिद्ध हैं—भीम-पाक और नल-पाक और दोनों ही पुरुष थे।'

वह जोर से हँसी। उसने कहा—'वहाँ नौकरानी थी, पर काम तो बहू ही करेगी। करने को तो मना नहीं किया मैंने। पर कोई तुल जाय कि मेरा बनाया उसे पसन्द ही नहीं आयेगा, तो कोई कितना भी अच्छा बनाये, क्या नतीजा निकलेगा? बस, वही हुआ जो होना था!'

हम लोग खा चुके थे। छत पर चटाई बिछा कर बैठ गये। मैंने अपनी सिगरेट जला ली।

मतवाली हवा थी। सिर पर पीपल खड़खड़ा रहा था। हम दोनों उस अँधेरे में पास-पास बैठे थे।

सविता ने कहा—'अच्छा; सच बताइये, आपको यह सब देख कर कुछ ताज्जुब नहीं हुआ?'

मैंने कहा—'नहीं।'

वह कुछ देर मुझे घूर कर देखती रही। फिर कहा—'यह अन्धेरी रात, यह सनसनाती हवा, और मैं किसी दूसरे की पत्नी! ताज्जुब नहीं होता तुम्हें, कल्लाजी! सोचते नहीं कुछ मेरे बारे में?'

वह हँसी। फिर गम्भीर हो गई। कठोर स्वर में कहा—'विश्वास नहीं कर सको, तो न करना। किंतु यदि घृणा ही तुम्हारे आश्वासनों का एकमात्र आधार है, तो भी मैं तुमसे घृणा नहीं कर सकूंगी।'

मैंने रोक कर कहा—'सविता देवी!'

सविता का बाँध टूट गया। आंखों में आँसू छलक आये, जिन्हें उसने मुँह मोड़कर शीघ्रता से पोंछ लिया। जब उसने मेरी ओर देखा, तो हँस रही थी, जैसे कुछ हुआ ही नहीं?

सविता ने कहा—'एक दिन हम दोनों रात को बैठे बातें कर रहे थे, उन्होंने कहा—'सविता अब तो परीक्षा भी हो गई। तुम्हारा क्या विचार है ? गाँव चला जाय, तो कैसा ?' मैं नहीं जानती, उन्होंने क्या सोच कर यह प्रस्ताव किया। गाँव तो दूर न था। किन्तु मैं गाँव जाने का नाम सुन कर ही डर-सी गई। न जाने मेरी आत्मा में एक अनजान यातना की भावना कैसे भर गई। किंतु मैंने कहा—'चलिये मुझे कोई उज्र नहीं।'

'तीसरे दिन हम चल पड़े। मैंने एक बसंती रंग की रेशमी साड़ी पहन रखी थी। पैरों में ऊँची ऐड़ियों की सैंडलें थीं। बस, और कोई खास बात न थीं।'

हमने इक्का कर लिया। इक्के वाले ने मुझे घूर कर देखा। उनसे पूछा—'सरकार कहाँ चलूँ ?'

उन्होंने पता बताया। उसी गाँव का इक्के वाला भी था। फौरन उन्हें पहचान गया। फिर उसने एक बार दबी नजरों से मेरी तरफ मुड़ कर देखा। और मुस्कराकर अपनी तरफ की बोली में कहा—'सरकार की पढ़ाई तो खतम हो गई ?'

उन्होंने कहा—'हाँ।'

इसके बाद वह कुछ चिन्ता में पड़ गये। उनके मुख पर स्पष्ट ही कुछ व्याकुलता के चिह्न थे। मैंने अंग्रेजी में पूछा—'आप इतने परेशान क्यों हैं ?'

उन्होंने मेरी ओर देखा। देख कर एक लम्बी साँस ली। शायद एक बार पूरे शरीर में एक कँप-कँपी सी दौड़ गई। उन्होंने बहुत धीरे से अंग्रेजी में ही उत्तर दिया—'मैंने गलती की कि तुम्हें यहाँ इस तरह

ले आया। अब भगवान के लिये कम से कम कुछ तो शरम करो! सिर तो ढँक लो।'

मैं मन ही मन बहुत विक्षुब्ध हुई। मैंने भला कब मना किया था; किन्तु शहर में तो इन्हें यह सब बुरा नहीं लगता। गाँव की तरफ पैर उठाते ही क्यों कुछ से कुछ होने लगे? जैसे मैं कोई अंग्रेज थी कि मुझे हिंदुस्तान में शरम करने की रीति भी नहीं मालूम थी। शरम का विचार भी कैसा अजीब लगता है। मद्रासी औरतें कभी सिर नहीं ढँकती, तो क्या वे सब बेशरम हैं?'

खैर एक सिर क्या मेरे दस सिर होते, तो भी मैं उन्हें ढँक लेती। एक दिन में तो किसी देश के रीति-रिवाज अच्छे हों या बुरे हों, कभी बदल नहीं जाते।

इक्का बढ़ा जा रहा था। उस राह के गचके याद आते ही अब भी कमर में दर्द होने लगता है। पहली ही बार मुझे मालूम हुआ कि गाँव की *जिंदगी कितनी कठिन है।*

'उसके बाद हम लोगों ने बैलगाड़ी पकड़ी। जैसे-जैसे गाँव पास आता जाता था, उनका चेहरा फक पड़ता जा रहा था। लगता था, जैसे उन्हें मुझ पर असीम क्रोध आ रहा हो। मेरा मुंह खुला ही था। यह मुझे वास्तव में बहुत ही घृणित मालूम दिया कि मुंह पर मैं एक लम्बा-सा घूँघट खींच लूं और फिर उनकी ऐड़ियों पर नजर गड़ाये चलूं।'

'रास्ते में जो भी गाँव वाले मिलते, हमें खुली बैलगाड़ी में बैठा आपस में एक दूसरे की ओर देखकर वे मुस्कराते। वह यह सब देखते और जल-भुन कर खाक हो जाते। किन्तु करते क्या? एक बार तो मुझे लगा, जैसे अब एक चाँटा पड़ने ही वाला है। लेकिन मुझे स्वयं

उनके ऊपर अचरज हुआ। यह आदमी शहर में क्या-क्या रंग नहीं दिखाता, जो यहाँ बिलकुल ही फक पड़ता जा रहा है? गाँव के बहुत से छोटे-छोटे लड़के और लड़कियाँ हमें देख कर कौतूहल से इकट्ठी हो गईं मैंने उनकी बातों को सुना? वे आपस में कह रहे थे—'छोटे मालिक शहर से पतुरिया लाये हैं। आज कोठी में नाच होगा...'

'उनके आनन्द की सीमा नहीं रही। उनके जीवन का यह भी एक बड़ा स्वर्ग है कि मालिक के घर रण्डी नाचेगी, और वह देख सकेंगे मेरे मन में तो आया कि धरती फट जाय और मैं समा जाऊँ। वह घृणित शब्द 'पतुरिया' मेरे हृदय पर हथौड़े की-सी भयानक चोट कर उठा। आज उन अज्ञानी देहाती अनपढ़ बच्चों ने उस संस्कृति का पर्दा फाड़ कर रख दिया था। जो उनके मालिक ने उन्हें दी थी।'

'मैंने देखा, वह चुप बैठे थे, जैसे यह व्यक्ति मोम की एक पुतली मात्र है। मेरी आँखों में आँसू उबल रहे थे, जिन्हें मैं जबरन अपने होंठ काट कर रोक रही थी। और बच्चों की खुशी का वह कठोर शब्द पतु-रिया मेरे सारे जीवन के संचित पुण्य और अभिलाषाओं के साथ एक भीषण बलात्कार कर रहा था।

शहर में कोई यदि मुझसे यही बातें कहता, तो मैं उसकी आँखें नोंच लेती। किन्तु वहाँ मैं कुछ भी नहीं कर सकी। वास्तव में यह सोलहवीं सदी के स्थिर अन्धकार का बीसवीं सदी की चलती किरन पर हमला था।

दिन भर मुझे लम्बा घूँघट खींच कर रहना पड़ता था। किन्तु मैंने कभी कुछ नहीं कहा।

'घर में उनकी चाची, उनकी बुआ, बुआ की बहिन की लड़कियाँ और एक बूढ़ी मामी थी। उन बुढ़ियों को जैसे एक नया शिकार मिल गया था?'

जब कभी वह मुझे मिलते, मैं कहती; 'शहर चलिये! यहाँ तो मन नहीं लगता' तो वह कहते, 'कुछ दिन तो रहना ही होगा। सदा तो यहाँ रहना नहीं। फिर इतनी घबराती क्यों हो? थोड़े दिन ऐसे ही रह लो।'

'गांव में अन्धेरा हुआ नहीं कि बस ब्लैक आउट हो गया। जहां लोग पढ़ना-लिखना नहीं जानते; जहां लोग दिन में इतनी कड़ी शारीरिक मेहनत करते हैं कि रात को कोशिश करके भी नहीं जाग सकते, वहां रोशनी जले भी तो किस लिए? वहाँ तो बस आदमी ने प्रकृति से बस इतना संघर्ष किया है कि सिर पर एक छप्पर छा लिया है और कुछ नहीं।'

घर की बगल में अपना ही एक छोटा मकान था। उसमें उन्होंने लगभग तीन-चार वर्ष पहले एक पुस्तकालय खोला था। उसमें सैकड़ों पुराने उपन्यास भरे हुए थे। दैनिक पत्र भी आता था।

'सुबह चाची मुझे सबके उठने से पहले उठा देतीं। मैं सब झाड़ू-बाड़ू लगा देती, ताकि जब लोग उठें, तो मुझे उनके सामने यह काम करने की नौबत न आये। फिर मैं खाना बनाने में जुट जाती थी। सबको खिलाते-पिलाते प्रायः तीन बज जाते। फिर शाम को खाना बनाने की तैयारी होती। रात को जब सब खा चुकते, तब प्रायः नौ बज जाते। उसके बाद पैर दाबने की रस्म के लिये तैयार रहना पड़ता। जितनी स्त्रियां थीं, सभी के पैर दाबने पड़ते। आप ही बताइये, किसके पैर में दर्द न होगा, जब कोई आदमी खुद-ब-खुद पैर दाबने को पहुँच जाय?'

'साढ़े ग्यारह बजे रात को मैं एक उपन्यास ले कर, लालटेन जला छत पर बैठ गई। दूसरे ही दिन चाची ने कहा—'बहू, तुम बहुत रात तक पढ़ती हो। लोग-बाग कहते हैं कि सिर खोले ही बहू छत पर

बैठती है। यह तो भले आदमियों के घर के कायदे नहीं! रात को देर तक पढ़ोगी, तो सुबह को उठने में भी देर हो जाया करेगी।'

मैं खून का घूँट पी कर रह गई।

रात को मेरा बिस्तर भी उसी छत पर लगाया जाता था, जिस पर और औरतें सोया करती थीं। यह मैं मानती हूँ कि कभी-कभी मैं पढ़ने के कारण देर तक जागती रहती, और उठने में देर हो जाती। कभी-कभी रात को मैं इतनी थक जाती कि फिर किसी के पैर-वैर दाबने नहीं जाती। इस पर एक हंगामा उठ खड़ा होता। 'बहू क्या हुई आफत का परकाला हो गई। भला कोई बात है? यह कोई कायदा है।'

'मैंने अब इधर-उधर ध्यान देना छोड़ दिया। रात को पढ़ने के बाद इतनी थकावट आ जाती कि जाकर बिस्तर पर एकदम बेहोश हो जाती, और किसी बात का ध्यान नहीं रहता। जब दो-चार दिन ऐसे ही बीत गए, तो अचानक एक रात उनके सिर में दर्द होने लगा। मैं मरहम लेकर गई। किन्तु यह दर्द कैसा दर्द था, वह मुझ से छिपा नहीं रहा। दर्द की भी हद होती है। रोज रात हुई नहीं कि उनका दर्द शुरू हो गया, और मुझे उसी तरह वहीं रह जाना पड़ता। हम दोनों को दूसरी छत पास होने के कारण कोई स्वतंत्रता नहीं थी।'

'डाक्टर कहते हैं, इन्सान को जवानी में कम-से-कम छः घन्टे सोना चाहिए। किन्तु मेरी रात तीन घन्टे की हो गई थी। उस थकान के कारण मुझ में एक प्रकार का चिड़चिड़ापन पैदा हो गया।'

एक रात उन्होंने कहा—'तो तुम पढ़ती क्यों हो?'

मैंने कोई उत्तर नहीं दिया।

उन्होंने कहा, 'भारतीय नारी सहन-शक्ति की एक प्रतिमूर्ति समझी जाती है।'

'मैंने ऐसी रटी हुई बहुत सी बातें सुनी थीं। कहा कि आप मुझे शहर में ही रखें, तो अच्छा हो।'

उन्होंने देर तक सोचा। फिर कहा, 'शहर तो चलना ही है। लेकिन जिस गाँव के कारण शहर है, उसमें भी तो रहना होगा।'

'मैं फिर चुप हो गई। देर के बाद मैंने कहा, आप बुरा न मानें, तो एक बात कहूँ।'

'उन्होंने कहा, 'कहो!'

मैंने कहा, 'गाँव की जिन्दगी आपको जैसी भी लगे, मुझे तो अच्छी नहीं लगती। इससे तो यह अच्छा हो कि आप अपने पैरों पर खड़े होकर कमायँ, खुद खायँ और मुझे भी खिलायँ। गरीबों का खून चूँसकर, अपने स्वार्थों को कायम रखने के लिये उन्हें धोखा देकर अपने जीवन का आदर्श खो देना मुझे तो अच्छा नहीं लगता।'

वह चौंक उठे। उन्होंने कहा, 'तुम्हारी हर बात में कुछ नफरत है। प्रत्येक स्त्री तकलीफों के होते हुए भी अपने पति से अवश्य मिलना चाहती है। पर तुम हो कि किस्से कहानियाँ ही पढ़ कर ही सो जाती हो। तुम्हें कभी मेरी चिन्ता भी नहीं हुई। इसी से सिर दर्द के बहाने तुम्हें बुलाना पड़ता है।' फिर एक लम्बी साँस खींच कर कहा, 'तुम्हें न जाने क्या हो गया है?'

मुझे हँसी आ गई। मैंने मज़ाक में ही कहा, 'आप से नफरत भी करूँगी, तो क्या हो जायेगा? आप फिर मेरे पति न रहकर कुछ और हो जायँगे क्या?'

उन्होंने मुझे घूरकर देखा और कहा, 'तो तुम समझती हो कि तुम फंस गई हो। अर्थात् तुम मुझे प्यार नहीं करतीं?'

मैं बड़े चक्कर में पड़ी। किसी से कोई कैसे कहे, मैं तुम्हें प्यार करता हूँ। सच, मेरा तो मुँह नहीं खुलता। एक दम बड़ी लाज सी मालूम देती है। मैंने कोई उत्तर न देकर एक दम चुप्पी साध ली। उन्हें जमींदारी की शान के विरुद्ध कही हुई बात अच्छी न लगी। कहने लगे, 'खानदान की इज्जत को कायम रखना पहला फर्ज है, सविता !'

मैंने कहा, 'लेकिन अब तो सवाल ही दूसरा है। कल तक आप दूसरों को पिटवाने में अपनी शान समझते थे, आज वह बर्बरता बढ़ गई है। आप स्वतंत्रता के आदर्शों को लेकर चले थे और यहाँ रीति-रिवाजों की खूनी धारा में सब कुछ बहाते चले जा रहे हैं। खानदान की इज्जत क्या इसी में है कि आप इसी तरह बेकार पड़े रहें, दूसरों के पसीनें की कमाई खाया करें? क्या आप जिन रस्मों को खानदान की इज्जत कह कर पाल रहे हैं, आप उसी गँवारपन में विश्वास करते हैं ?'

वह घूरते रहे। कहा, 'तुम्हारी बातें कैसी रटी हुई सी लगती हैं। यहाँ कोई डिबेट हो रही है क्या ?'

मैंने कहा, 'आप इतनी बड़ी बात को हँस कर टाल रहे हैं ? आपमें मुझे यकीन हो गया है, साहस की कमी है।'

उन्होंने कहा, 'धीरे धीरे बात करो, सविता ! कोई सुन लेगा।'

मुझे बहुत ही बुरा लगा।

उन्होंने कहा, 'अच्छा मान लो तुम्हारे पीछे सबको छोड़ दूँ . '

मैंने कहा, 'ऐसा आप सपने में भी खयाल न करें। अगर आपने ऐसा सोचा है, तो आपने बड़ी भारी गलती की है। मैं अपने लिये नहीं कहती। मैं उस विचार और स्वतंत्रता और आदर्श का विचार करके कहती हूँ, जिसके आप पहले स्वयं कायल थे। घर छोड़ने को मैंने नहीं कहा। मैंने सिर्फ कहा कि पुराने ढर्रे की झूठी रस्मों को छोड़ कर हम और आप वही करें, जो आज तक कहा है।'

उन्होंने कहा, 'ऐसा नहीं हो सकता, सविता!' भले ही तुम आदर्शों की दुहाई दिये जाओ, लेकिन जो कुछ होगा, उसे देख कर लोग समझेंगे कि एक औरत की बात सुनकर घर छोड़कर चला गया कपूत। और यह मैं कभी बर्दाश्त नहीं कर सकूंगा!'

'एक बार मेरा रक्त क्रोध से खौल उठा। कितना भारी कायर था वह व्यक्ति, जो अपने जीवन की सारी झूठ का सहारा ले अपनी प्यास बुझाने के लिये मुझ से प्रेम की आड़ में विलास चाह रहा था।'

सुबह की सुफेदी की झलमलाहट पर मुर्गे की गूंजती बांग सुनाई दी। मैं उठ गई, क्योंकि मेरे झाड़ू लगाने की बेला आ गई थी।

मैंने एक बार करुण आँखों से उनकी ओर देखा, किन्तु वह झपकी ले रहे थे।

मैं उठ गई। वह सो गये।

उस दिन मेरा शरीर थकान से चूर-चूर हो रहा था। काम तो करना ही था। यदि किसी से कहती कि मैं सोना चाहती हूं, रात को सो न सकी, तो जो सुनता वही मुझे निलज्ज समझता। लज्जा और संकोच ने मेरी जीभ को तालू से सटा दिया, और मैं बराबर काम करती रही।

दोपहर को जब मैं कमरे में बैठी थी, मुंशी जी पुस्तकालय बन्द करके चाभी देने भीतर आये। उस समय वहाँ कोई और नहीं था। मुंशी जी मुझे देखकर ऐसे घबरा गए, जैसे कमरे में कोई साँप पड़ा हो। मैंने कहा, 'चाभी मुझे दे जाइये, और कल का अखबार आपने क्यों नहीं भेजा ?'

'मुंशी जी ने लजाते हुए सिर नीचे करके जवाब दिया, भिजवा दूंगा।'

वह चले गये । इसी समय मैंने उनकी बूआ की बहिन की बेटी का कर्कश स्वर सुना—'आय हाय ! देखो तो, कैसी लपर-लपर जीभ चला रही है ! जरा भी तो हया-शर्म हो !'

मैं एकाएक काँप उठी । उत्तर दिया बूढ़ी मामी ने—'अच्छा किया, दुलिहन, बहुत अच्छा किया ! मुंशी जी को देख कर चाची या सास तक घूंघट खींच कर चुप हो जाती हैं । एक नहीं उनके अनेक बच्चे हो चुके हैं । तेरे एक-आध तो हो जाता ।'

एक तीसरी आवाज सुनाई दी—'अजी हटो, मामी जी ! कोई बात है । उल्टे मुँशी जी शरमा रहे थे । और दुलिहन रानी हैं कि मुंह तक नहीं ढँका गया । छिः ! यह भी कोई बात है ।'

'बूआ की भांजी ने कहा—'पढ़ी-लिखी हैं, जो ! तुम तो हो गँवार ! शहरों का यही रिवाज है । पराये मर्द से जब तक हंस-हंस कर बातें कर न ले, तब तक खाना कैसे हजम हो ?, जाने बेचारी कितने दिन के बाद आज यह मौका पा सकी है ।'

इसी समय चाची आई । उन्होंने भी सुना । तुरन्त आ गई मेरे कमरे में । हाथ मटका कर कहा—'हाय, दुलिहन, यह तूने क्या किया ? झाड़ू न लगी, न सही, पैर न दबाये तूने बड़ी बूढ़ियों के ! तेरी बात तेरे ईमान पर ! हमने कभी तुझे कुछ कहा हो, तो हमारी जबान में कीड़े पड़ जायँ ! मगर यह क्या गजब है कि पढ़ाई-लिखाई ने तेरी चुटिया के नीचे से अकल ही साफ कर दी ?'

'वह क्रोध से हाँफ रही थी । मैं चुप बैठी रही, जैसे मैं जीवित नहीं मुझे मालूम हो रहा था कि जो कीड़े मेरी नसों में खून बन कर भाग रहे थे, वे अब धीरे धीरे जमने लगे थे, और अब वे सब मर जायेंगे, और उन्हीं के साथ मैं भी मर जाऊँगी । मेरे मुख पर पीलापन छा

गो—

गया। हाथ-पाँव काँपने लगे। उस कठोर लांछन से मुझे प्रतीत हुआ कि वास्तव में अब जिन्दा तो हूँ ही नहीं, लेकिन यह लोग हैं कि मेरी लाश पर थूकने से भी बाज नहीं आते।

चाची ने फिर कहा—'मामीजी, दुहाई है तुम्हें! इस घर में आज तक कभी ऐसा नहीं हुआ! आज तक किसी ने इस घर की औरतों की शकल देखना तो क्या, यह भी नहीं जाना कि उनकी आवाज़ कैसी है। क्या कहेंगे गाँव के लोग सुन कर? जब जमींदार के घर ही से धर्म उठ जायगा, तब लोगों के घर में क्या रहेगा? हमने सोचा था, अभी लड़की है, सब ठीक हो जायगा। लेकिन मामीजी, जिसके मुँह खून लगा हो, उसकी पानी से प्यास बुझेगी?'

मैं जोर से रो उठी। मैंने चिल्ला कर कहा—किसका खून लगा है मेरे मुँह? किस काम से इनकार किया है मैंने, जो आप मुझ पर दोष लगा रही हैं?'

'ओहो!' चाची चिल्ला उठीं—'दुल्हिन रानी पर दोष लगा दिया मैंने! दुश्मन तो मैं हूँ ही! इसी से दुश्मनी निकालने के लिये ही तो मैंने सूरज की माँ के मरने पर उसे पाल-पोस कर इतना बड़ा किया था!'

मामीजी ने डाँट कर मुझसे कहा—'अरी, बेहया! क्या करूँ, समझ में नहीं आता! जमाना बदल गया है, वर्ना पुराने वक्तों में इतनी बात कहने पर सारे दाँत झाड़ दिये जाते। मर्द नहीं रहे, बेटी, वर्ना मजाल है औरत की कि 'आ' से 'ऊँ' कर जाय?

बुआ ने कहा—'सूरज ने सिर चढ़ाया है इसे। जूती सिर पर धरेगा, तो धूल लगेगी ही। हम तो जानते ही थे शहर की लड़कियों के गुन। क्या किसी से छिपे हैं? देखो न उस लछमन को! जात का नीच

ही है, मगर राजी नहीं हुआ कि शहर की लड़की आ जाय उसके घर में बहू बन कर। अरे, जो नीच जातों ने नहीं किया, वह तुमने किया! मेरे राम, इस घर को अब क्यों भूलते जा रहे हो?'

और सचमुच शाम तक खबर गाँव भर में फैल गई। मैं कमरे में छिप कर बैठ रही। समझ में नहीं आता था कि क्या करूँ। खाना बनाने गई, तो मुझे सबने लौटा दिया यह कह कर कि 'जा, हमें आबरू बेंच कर सुख नहीं भोगने हैं!'

मैं लौट आई। चारों ओर अंधेरा-ही-अँधेरा नज़र आता था। एक ही आशा थी कि कम-से-कम वह तो मुझे अपराधी न समझेंगे। कम-से-कम वह तो मेरी रक्षा करेंगे?

दिन बीत चला। मेरी किसी ने सुधि तक नहीं ली। किसी ने खाने तक को नहीं पूछा।

रात को जब वह आये, तो शिकायतों का ढेर लग गया। ईंटों की बनी वे दीवारें शायद नहीं रहीं, क्योंकि बातों के तीर उन्हें छेद-छेद कर मेरे अन्तस्तल में बार-बार गड़ने लगे। और मुझे दर्द से चिल्लाने का तो क्या, कराहने तक का अधिकार नहीं था।

चाची ने कहा—'सूरज, इसे तो तू शहर ही ले जा, बेटा! इसमें घर-गृहस्थी में बहू बन कर रहने का सलीका नहीं है बिलकुल!'

'मामीजी ने भीतर से चिल्ला कर कहा—'जाने कौन जात-कुजात उठा लाया है। अच्छा ज़माना आया है!'

'क्या बात है आखिर?' उन्होंने घबरा कर पूछा।

'और जैसे यह कुछ हुआ ही नहीं!' चाची ने ताना मार कर कहा—'तो क्या राह में गाने-बजाने की जरूरत थी? भैया सूरज, हम तो

कुछ कहते नहीं, पर खानदान में अपने चाचा के बाद बस तू ही सब का मालिक है। हमने तो तुझे अपना बेटा मान कर ही पाला है। चाहे तो रख, चाहे छोड़ दे! हमारा क्या है, रो लेंगे! मगर तेरी तो गत बन जायगी।'

वह घबराहट से बोल उठे—'पैर नहीं दाबे? झाड़ू नहीं दी? खाना नहीं पकाया?'

'कौन कहता है, भैया?' चाची ने फिर कहा—'कसम है मेरे बच्चे की, जो आज तक कभी हम कोई ऐसी बात जबान पर भी लाई हों। इसका तो पढ़ना गजब का है, बेटा! पढ़ेगी तो आधी रात तक, और वह भी नहीं कि रामायण, उल्टे वह किस्से-कहानी तोता मैना के!'

मैंने सुना वह कुछ बोले। फिर उनके पैरों की चाप सुनाई दी। जैसे वह वहाँ से चले गये हों।

स्त्रियाँ अब भी आपस में फुस-फुस किये जा रही थीं। और मैंने सोचा, कमबख्त पढ़ाई न हुई मेरी मौत हो गई!

जिस समय उन्होंने कमरे में प्रवेश किया, अँधेरा छा रहा था। उनके पीछे-पीछे ही लालटेन लिये चाची थीं।

वह मेरे पास आ गये। कठोर स्वर में उन्होंने कहा—'क्यों? यह मैं क्या सुन रहा हूँ?'

'मैंने उत्तर नहीं दिया।'

चाची ने कहा—'ओहो! अब इतनी लाज हो गई कि बोल गले से निकलने के पहले सौ बचके खा रहा है?'

मैंने क्रोध से सिर उठाया। मेरी आँखों के आँसू सूख गये। मैंने चिल्ला कर कहा—'क्या किया है मैंने, जो तुम सब मेरा खून पी जाना चाहती हो? क्यों नहीं मुझे गला घोट कर मार डालते?'

उन्होंने मुझसे फिर कहा—'मुझे जवाब दो ! मैं जानना चाहता हूँ । आज न सही कल । मैं इस घर का मालिक हूँ । मेरे ऊपर खान-दान की इज्जत का सवाल है । क्या ज़रूरत थी तुम्हें मुन्शीजी से बात करने की ? समझा नहीं दिया था मैंने तुम्हें ? या अकेली तुम ही एक शहर की पली हो ? मैं तो हमेशा से गाँव में ही रहा हूँ ।'

चाची कमरे से बाहर चली गई । लालटेन वहीं छोड़ गईं । मैंने देखा, वह क्रोध से व्याकुल हो कर काँप रहे थे ।

उन्होंने कहा—'अब तक मैं तुम्हारी बात को तरह देता आया हूँ । शुरू में तुम्हारे पच्चीसों किस्से सुने, पर सुन कर पी गया । और कोई होता, तो मार-मार कर खाल उधेड़ दी होती । मैंने कहा कि थोड़े दिन की बात है, फिर शहर लौट चलेंगे । वहाँ तो मैं तुम्हें मटरगश्ती करने से कभी नहीं रोकता । फिर यह दो दिन तुमसे नहीं कट सकते ?'

उन्होंने उँगली उठा कर कहा—'तुमने मुझे कहीं का भी नहीं रखा ! आज तुमने यह नहीं सोचा कि तुम क्या कर रही हो ! कभी देखा था आज तक घर की किसी और औरत को उनसे बातें करते ?'

मैंने दृढ़ हो कर कहा—'लेकिन वह कमरे में घुस आये थे । उस वक्त और कोई न था । वह मेरी तरफ देख रहे थे ।'

'देखेंगे नहीं ?' उन्होंने कहा—'तुम मुँह खुला रखोगी, तो वह जरूर देखेंगे ! आज तक किसी और घर की बूढ़ी तक ने उनके सामने अपना मुँह खुला रखा है ? तुमने वह बात की है, जो हममें से किसी के भी बस की नहीं रही । घर-घर चर्चा हो रही है ।'

उन्होंने कहा—'बोलो ! जवाब क्यों नहीं देती ।'

मैंने कहा—'तुम पागल हो गये हो ! तुम कुछ भी सोच नहीं सकते । दुरंगी जिंदगी बिताने वाले ढोंगी ! पुस्तकालय से सिर्फ अखबार

मँगवाया था मैंने, क्योंकि इस नरक में सिवाय पढ़ने के मुझे और कुछ अच्छा नहीं लगता ! तुम मुझसे उसे भी छीन लेना चाहते हो । मुझसे नहीं हो सकती यह गुलामी ! मैं तुम्हारी बुआ, मामी, चाची की तरह अपढ़, गँवार नहीं हूँ, जो अपने आपको तुम्हारी जूतियों की खाक समझती रहूँ ।'

मेरी बात पूरी भी न हो पाई थी कि मेरी पीठ, हाथ और पाँव पर सड़ासड़ बेंत पड़ने लगे । मैं नहीं जानती कि मैं रोई क्यों नहीं । मैंने केवल इतना कहा—'मार ! और मार !'

उनका हाथ थक गया । घृणा से बेंत फेंक दिया, और उनके मुंह से निकला—'बेशरम'

'और मैं वैसी ही खड़ी रही ।'

'रात बीत गई । मैं वहीं बैठी रही । दूसरे ही दिन मैंने भैया को चिट्ठी लिख दी ।

उन्होंने चिट्ठी भेजने में कोई बाधा नहीं दी ।

दो दिन तक मुझे किसी ने खाने को भी नहीं पूछा ।

सुबह उठ कर देखा, द्वार पर भाई साहब खड़े थे । उनके चेहरे पर हवाइयाँ उड़ रही थीं । उनको देखते ही मेरी आँखों में आँसू आ गये । बहुत रोकने का प्रयत्न करके भी मैं अपने आपको रोक न सकी ।

भैया ने कहा—'क्या हुआ, सिवो ?'

मैंने कहा—'मैं यहां नहीं रहना चाहती ।'

'आखिर क्यों ! कोई बात भी तो हो ।'

मैंने उनसे कहा—'आपने मुझे कहाँ फेंक दिया !'

'क्यों, सूरज बाबू ने कुछ कहा ?'

मैंने कुछ उत्तर नहीं दिया। बाँह खोल कर बेंत की मार के निशान दिखा दिये।

'एक बार क्रोध से उन्होंने अपना नीचे का होंठ काट लिया। फिर सिर झुका कर कहा—'मैं समझता था कि तुम दोनों एक-दूसरे से प्रेम करते हो। तुम्हारा जीवन सुख से बीतेगा। लेकिन वह लोग कहीं अच्छे जो दुखी हैं, किन्तु दुख का अनुभव नहीं करते, क्योंकि वे गुलामी और आजादी का फर्क ही नहीं जानते। हिन्दुस्तान में अव्वल तो प्रेम के विवाह होते नहीं, और होते भी हैं, तो निभ नहीं पाते, क्योंकि यह प्रेम समाज की भीषण बेड़ियों को तोड़ने में असमर्थ रह जाते है।'

मैंने कहा—'किन्तु मैं ऐसी नहीं हूँ।'

भैया ने सिर झुका कर कहा—'हम लड़की वाले हैं। हमें सिर झुका कर ही चलना होगा। वर्ना मैं नहीं जानता कि क्या होगा? जो वो कहेंगे, उसी को करने में हमारा कल्याण है। अन्यथा कोई चारा नहीं।'

मैं चुप हो गई। भैया ने फिर कहा—'पति ही स्त्री का सब कुछ है, सविता!'

मैंने सर उठाया। कहा—'पति ही स्त्री का सब कुछ है, किन्तु बस पति पुरुष होता है। सीता जिस राम के पीछे चली थीं, वह पति पुरुषार्थी था। जो व्यक्ति अपनी ही रूढ़ियों में जकड़ा हुआ हाँफ रहा है, वह मेरे जीवन का आदर्श नहीं हो सकता! किसलिए मैं अपने एकान्त सुख को इतना बड़ा बना दूँ कि मेरी श्रद्धा, मेरी भक्ति एक ऐसे व्यक्ति को देवता समझ कर उसके पैरों पर जम जाय, जो स्वयं लड़ खड़ा रहा हो; जो स्वयं निर्बल हो और स्त्री को केवल वासना

बुझाने और खानदान की इज्जत की चक्कियों में पिसनेवाली दासी और बच्चे पैदा करने मात्र का एक साधन समझता हो, जो मेरी इंसानियत को धर्म के नाम पर कुचल कर मुझ पर घृणा से थूक देना चाहता हो!'

भैया काँप उठे। उन्होंने कहा—'तू क्या कह रही है, सविता? तेरी एक छोटी बहिन है। लोग अगर यह सब सुनेंगे, तो कहेंगे, 'अरे यह उसी की बहिन है!'

मैंने कहा—'किन्तु मैं यहां अब नहीं रहूँगी! तुम मुझे नहीं ले जाओगे, तो मैं किसी दिन गले में फाँसी लगा कर मर जाऊँगी।'

भैया सोच में पड़ गये। उन्होंने कुछ नहीं कहा।

मैंने कहा—अच्छा, कुछ दिन के लिए तो ले ही चलो!'

भैया ने कहा—'अच्छी बात है। जो होना है, वही होकर रहेगा। तू यही चाहती है, तो चल, तेरी मर्जी!'

'हम लोग लखनऊ आ गये। एक दिन भी नहीं रही थी वहाँ कि इलाहाबाद में एक मास्टरनी की आवश्यकता का समाचार देखा। यहां आ गई हूँ तब से। स्कूल खुलने के पहले इन्टरव्यू होगी।'

मैंने देखा वह संकुचित नहीं थी। हवा में उसके बाल मुंह पर बार-बार आ जाते थे। मैंने पूछा—'तो क्या आप वहां लौट कर नहीं जायँगी?'

सविता ने कहा—'कहाँ?'

'वहीं, गांव, सूरज के पास!'

—एक सौ सात

सविता ने दृढ़ स्वर से कहा—'नहीं, अब मैं निश्चय ही वहाँ नहीं जाऊँगी ! आप सोच भी नहीं सकते कि मुझे आते समय भी किसी ने तनिक भी स्नेह से नहीं देखा। वरन् उसके मुखों पर घृणा का विकृत रूप अपनी सीमा पार कर चुका था। वे लोग मुझे मार डालेंगे। मैं वहां कभी भी नही जाऊँगी !'

मैंने कहा—'इस समय आप क्रोध में हैं। आखिर सूरज से आप प्रेम करती थीं, और वह भी प्रेम करता था ?'

सविता हँस दी। कहा—'आप मुझे जानते हैं। मैं आपको जानती हूँ। अगर शाम को गंगा किनारे आप मुझे पहले देखते और आवाज देते, पर मैं आप को पहचानने से इन्कार कर देती या टालू बातें करती, तो क्या आप फिर कभी मुझसे मिलने की ख्वाहिश रखते ?'

बात सविता ने ठीक ही कही थी। किन्तु मैंने कहा—'फिर ?'

'फिर क्या ?' उसने कहा—'फिर तो साफ ही है।'

मेरे मुँह से निकला—'बड़ी हिम्मत है आप में !'

'जी नहीं।' उसने रोक कर तुरन्त उत्तर दिया—'हिम्मत से काम नहीं चलता अकेले। अगर भैया न आते, और अकेले निकल पड़ती, तो जब राह में लड़के, लड़कियां मुझे देख कर तालियां बजा-बजा कर चिल्लाती, 'बाबू की पतुरिया सहर जा रही है।' तब सूरज बाबू मुझे शायद क्रोध के विक्षोभ में गला घोट कर मार देते ! उन्हें तो अपनी जमीन अपनी जिन्दगी की सचाई से भी ज्यादा प्यारी है। उनके खानदान की इज्जत धूल में मिल जाती। इसी से तो कहती हूँ, हिम्मत ही से कुछ नहीं हो सकता। अगर मैं पढ़ी-लिखी न होती, अपने खाने-कमाने लायक नहीं होती तो क्या कभी ऐसी हिम्मत कर सकती

थी ? आदर्शों को पूरा करने के लिए उसके साधनों की ठोस बुनियाद की जरूरत है !'

मैं सुनता रहा। सविता कहती रही—'दुनिया मुझे बदनाम करेगी, मुझे कुलटा कहेगी। किन्तु बताइये आप ही, मैं इसके अतिरिक्त और क्या करती ? जीवन भर वही गुलामी और क्या ? आज तक उस गुलामी की नफरत को ही पातिव्रत कह कर औरत को समाज में धोखा दिया गया है, अब मैं उस जाल को फाड़ कर फेंक देना चाहती हूँ !'

'वह हाँफ रही थी। मैंने देखा, वह उत्तेजित हो गई थी। शायद वह यह जानना चाहती थी कि मैं उसके बारे में क्या सोच रहा था।'

मैंने कहा, 'आपकी बहिन का क्या होगा ?'

उसने कहा—पढ़ी-लिखी है। कोई मन का ही नहीं विचारों का भी दृढ़ सामंजस्य मिलेगा, तब शादी कर लेगी। वर्ना कमा खायेगी। पेट की मजबूरी से ही तो स्त्री सिर झुकाने को मजबूर होती है।'

'और, मैंने कहा—'आप ऐसे ही जीवन बिता देंगी ?'

'वह क्षण भर सोचती रही। फिर कह उठी—'नहीं, मैं उनके पीछे अपना जीवन बरबाद नहीं करूँगी, क्योंकि वह मुझसे छूटते ही फिर ब्याह कर लेंगे। और मनुष्य उसी स्मृति के पीछे अपने सुखों का त्याग करता है, जिसे वह सुखदायक और पवित्र समझता है।'

'तो आप विवाह कर लेंगी ?'

'उसने मेरी ओर घूर कर देखा, फिर हँसी। कहा—'मैं तो सच अपने को अयोग्य नहीं समझती। समाज में क्या एक व्यक्ति भी ऐसा न खोज सकूँगी, जिसमें आत्मा का थोड़ा भी सत्य हो, साहस शेष हो। सब ही तो एक दम निर्जीव, कायर नहीं होते। समाज मुझसे

भले ही घृणा करे, किन्तु मैं तो मनुष्य से घृणा नहीं करती, जो अकेली बने रहने की तपस्या का बोझ अपने कंधों पर रख कर छटपटाऊँ, और उस यातना को आदर्श बना कर सत्तास्वार्थियों को एक और मौका दूँ कि वे अपने पापों पर धूल उछाल कर उसे ढँक दें और अपनी अच्छाइयों की झूठी झलक को सबके ऊपर ला धरें !'

'और मैंने देखा वह शान्त थी। कोई डर न था उसे । कोई शंका नहीं थी उसके मुख पर । आज मैंने देखा कि स्त्री भी पुरुष की तरह आत्म-सम्मान की आग में तप कर आजादी माँग रही थी, और सारे संसार का अन्धकार भरा पाप उसपर घृणा से लांछन लगा रहा था, उसे बरबाद कर देना चाहता था, पर वह अडिग खड़ी थी ।'

कल्ला चुप हो गया । सिद्दी और चंदू ने भारी पलकों को उठाया । रात बहुत बीत गई थी ।

सिद्दी ने कम्बल को और अच्छी तरह लपेट लिया । तीनों इस समय गंभीर थे ।

कल्ला के मुख पर एक शक्ति दमक रही थी, क्योंकि उसने उस नारी की जीवित मानव की हुंकार सुनी थी, उसने नारी का वह विक्षोभ देख था, जिसके सामने रूढ़ियों की चिता धू धू जल रही थी ।

# सती का शाप

अमृतराय

सांस जिसकी चलती रहे उसे ही जिन्दा आदमी कहते हैं। अभी थोड़ी देर पहले तक सूर्यकान्त एक जिन्दा आदमी था। क्या हुआ जो तपेदिक ने उसकी रग-रग में, रेशे-रेशे में सहजन की फली की तरह अपनी पतली-पतली, लम्बी-लम्बी उँगलियों के बड़े-बड़े नुकीले नाखून धँसा दिये थे। क्या हुआ जो उसकी जिन्दगी एक कुत्ते की जिन्दगी थी जो बरामदे के किसी कमरे में पड़ा-पड़ा औंघाया करता है, और अपने शरीर में पड़ी हुई किलनियों को बीन-बीनकर खाया करता है।

अपने घर में सूर्यकान्त का भी बहुत कुछ यही हाल था। घर के एक बाहरी कमरे में वह दिन रात पड़ा रहता, अकेला। घर में वह औरत थी जिसने नौ महीने उसको अपने पेट में रखा था। घर में उससे छोटे-छोटे अनेक लड़के थे, लड़कियाँ थीं, जिन्हें उसने अपने भाई और बहिन के रूप में पहचाना था, लेकिन कोई न था जो मौत की घड़ियाँ गिनते हुए उस नौजवान के, सूर्यकान्त के, पास जाकर बैठता। जो दो-तीन साल की अपनी बीमारी में चालीस साल का एक भूख से एक लांगर आदमी दीखने लगा था। अपने कमरे में पड़ा-पड़ा सूर्यकान्त अपनी सांसों को दबाया करता और ये गर्म सांसें बाहर न निकल कर अन्दर ही अन्दर जब घुटने लगती तब उसका फेंफड़ा और भी जैसे जल उठता।...

तो भी उसकी सांस चल रही थी, वह जिन्दा था। अब वह जिन्दा नहीं है, उसकी सांस अब नहीं चलती। उसकी लाश को अभी लोग उठाकर ले गये हैं। जिस कमरे में वह मरा था, उसी की चौखट पर सूर्यकान्त की बीवी रमा अपने छः-सात महीने के बच्चे को लिए हुए बैठी है। दो बार उसने चौखट पर सिर पटक-पटक दिया था, जिससे उसके माथे में घाव हो गया था। वह कहीं एक बार अपने मन की सारी ताकत लगाकर इस जोर से चौखट पर अपना सिर न दे मारे कि उसकी जिन्दगी का खेल तमाशा ही खत्म हो जाय, इस दुर्घटना को बचाने के लिये दो औरतों ने मजबूती से उसे अपनी बांहों में कस रखा था। इसमें शक नहीं कि उन्होंने दया के मारे ही ऐसा किया होगा, लेकिन रमा को लगा कि वे बैर के मारे उसे नहीं मरने देती। वे नहीं चाहती कि वह बिना विधवा की जिन्दगी का पूरा मजा चखे इस दुनियां से बिदा हो जाय! जिस मुजरिम को फांसी की सजा होती है उसे अगर कोई रोग हो जाय तो न्याय का यह आदेश है कि मुजरिम को रोग से कभी न मरने दिया जाय, उसे अच्छे से अच्छे डाक्टरों की मदद से जल्द अच्छा करके फांसी पर टांगा जाय।

रमा के आंसू चुपचाप बह रहे हैं। जोर-जोर से रोने की ताकत अब उसमें नहीं है। घर के अन्दर से धाड़ें मार कर रोने की आवाज आ रही है। मकान का मुंह पच्छिम को है। इसलिये अब डूबते सूरज की पीली किरणें बरामदे में आकर गिर रही हैं, जहां रमा और दूसरी औरतें बैठी हैं। रमा का बच्चा बहुत छोटा है, लेकिन मां को और दूसरी औरतों को रोते देखकर, घर के अन्दर से उठनेवाले कोहराम को सुनकर और वातावरण के अजीब भयानकपन से डरकर वह भी बुरी तरह चिल्लाने लगा था। लेकिन अब रमा को उसके रोने-चिल्लाने की कतई परवाह नहीं है। वह आदमी जिससे उसे डर लगता था, उसका आदमी, अब

मर चुका है; अभी उसके सामने से उसकी लाश को लोग उठा ले गये हैं। अब उसे किस बात का डर?

उसकी आंख से आंसू फिर झर-झर बहने लगे। उसे ध्यान आया कि उसका पति बच्चे के रोने को बिल्कुल न सह पाता था। बच्चा रोया नहीं कि उसका पारा चढ़ा। गुस्से में आकर वह बच्चे को मारता, पत्नी को मारता। कभी-कभी बहुत बुरी तरह मारता। मारने के लिए उसके हाथों में न जाने कहां से ताकत आ जाती। मारता और बुरी-बुरी गालियां देता। बिल्कुल आपा खो बैठता। कहना होगा कि सूर्यकान्त जब अच्छा था तब भी उसका स्वभाव कुछ बहुत अच्छा न था इसीलिए रमा बच्चे को लेकर मायके चली गयी थी। अभागी रमा, पति के मरते समय भी उसके सामने न रह सकी, उसका मुँह न देख सकी, उसका सिर अपनी गोद में न ले सकी, उसको हिम्मत न बँधा सकी, अपने बच्चे के बारे में बच्चे के पिता कोई वचन न दे सकी। और अभागा सूर्यकांत, जो मरते समय भी अपने बीबी-बच्चों को न देख सका, अपनी मा को न देख सका, बाप को न देख सका, भाई-बहनों को न देख सका। बाप कालिका प्रसाद मुख्तार इलाके पर गये हुए थे, वसूल तहसील के लिए, उसी सुबह। मा गृहस्थी का कोई काम कर रही थी। सोचा, अभी जाती हूँ, अभागे की तबीयत जब देखो, तब ऐसी ही अब-तक हुआ करती है। भाई-बहन न आये क्योंकि उन्हें दादा के कमरे में जाने की सख्त मनाही थी। रमा तो थी ही नहीं; बच्चे की तबीयत एक महीने से काफी खराब थी। रात भर बच्चा रोता। रोना सूर्यकान्त को ज़हर लगता। उसे गुस्सा आता और दूसरे रोज उसकी तबीयत और भी खराब हो जाती। अब बच्चे को रमा क्या करती। बच्चा तो बच्चा, रोना तो उसका स्वभाव ही है, और फिर जब उसे

कोई तकलीफ हो तो वह भला कैसे न रोये। बच्चे के रोने पर किसी का बस न था, सर्वकांत को अपनी तबीयत पर बस न था, घर में कोई रात भर बच्चे को रखने के लिए राजी न था, हालांकि घर में बच्चे की दादी थी, जिसके अभी भी बच्चे होते जा रहे थे, कई बुआ थीं, जो इतनी काफी बड़ी हो चुकी थीं, कि चाहतीं तो बच्चे को सँभाल लेतीं ...गरज यह कि कोई बच्चे का बोझ लेने को तैयार न था, और बच्चे को लेकर मरीज के कमरे में रहने का मतलब था, बच्चे को मौत का मुँह में ढकेलना और इसके अलावा मार खाना, गाली खाना और मरीज की तबीयत को और भी खराब कर देना। मार या गाली खाने से रमा को कोई भी डर न था—हिन्दू लड़की थी, पति के हाथों यही उसका प्राप्य था। विद्रोही स्वभाव की लड़की थी नहीं, विशेष पढ़ी-लिखी थी नहीं कि औरतों की आजादी और बराबरी का राग अलापती। घर में उसने भैया को भौजी की कुटम्मस करते देखा था। बाप के हाथों मा के पिटने की भी एकाध धुँधली स्मृति उसके मन में थी। इन सब संस्कारों के साथ गाली खाना, लात-जूता खाना ही उसे स्वाभाविक लगता। दो गाल भी पति हँसकर बोल देता तो वह निहाल हो जाती, उसे लगता कि उसे दुनिया की दौलत मिल गयी है। तो मार पीट से तो रमा को ज्यादा डर न था, पिटती तो उसकी बड़ी-बड़ी आंखों से बड़े-बड़े आँसू बड़ी देर तक टपकते रहते, आँख से गाल पर आते, गाल से ठुड्डी पर आते और ठुड्डी से चू पड़ते। रोते रोते जब ज्यादा देर हो जाती और आँसू सूख चलते तो आँसू की एकाध बड़ी बूँद थोड़ी-थोड़ी देर से आंख से निकलकर गाल पर आती और चू पड़ती। रमा को सब से बड़ा डर था बच्चे को रोग लगने का और फिर पति का गुस्सा और गुस्से से उनकी तबीयत का बिगड़ना ...वह कलेजे पर पत्थर रखकर मायके चली गयी।

जाते समय उसे यह बार-बार लग रहा था फिर अब इनका मुँह देखूँगी कि नहीं ! लेकिन तब अपने मन को समझाने में उसे कोई खास मुश्किल नहीं हुई थी, क्योंकि तब सूर्यकांत की तबीयत सुधरती-सी जान पड़ी थी। वजन आठ पौंड बढ़ गया था, चेहरे पर सुर्खी आ गयी थी, भूख खुल गई थी। ...लेकिन

उस रोज सुबह ही से सूर्यकांत की तबीयत बिगड़ने लगी थी। उसने कई बार रमा को और बच्चों को देखने की लालसा प्रकट की, लेकिन घर के लोगों ने उसकी बात पर कुछ ध्यान नहीं दिया और वह मरते वक्त अपनी बीबी-बच्चों को आँख भर कर देख भी न सका—और देख ही किसे सका वह ? न उनको जो उसे दुनिया में लाये और न उसको जिसे वह दुनिया में लाया। किसी को नहीं। मरना तो आदमी को अकेला ही है, मरने में कोई किसी का साथ नहीं देता, यह तो ठीक है, लेकिन मरते वक्त अपनों को देखने की हमेशा-हमेशा के लिए जी भर देखने की हविस किसको नहीं होती ? और जो अपनी इस जरा सी हविस को भी पूरा न कर सके, उससे ज्यादा अभागा और कौन हो सकता है ?

यों तो रमा क्या किसी से कम अभागी थी जो एक तपेदिक के रोगी के साथ ब्याही गयी और दो साल की विवाहित जिन्दगी के बाद ही सोलह साल की उम्र में विधवा हो गई। इतनी कम उम्र में ब्याही गयी, इतनी कम उम्र में बच्चा हुआ और इतनी कम उम्र में विधवा हो गयी—औरतों की जिन्दगी के सभी काम रमा ने इतनी कम उम्र में पूरे कर डाले। जो काम करना है उसमें देर करने से फायदा ? अब उसे रांड की जिन्दगी बिताने के लिए बहुत फुर्सत थी। अपने से लड़ने के लिए बहुत वक्त था।

रमा के पिता ने जान बूझ कर अपनी लड़की को कुएं में ढकेला हो, यह बात नहीं है। उनको शादी हो जाने के बहुत दिन बाद पता चला। तब सिवा माथा ठोक लेने और भाग्य की लकीर का रोना रोने के और कुछ नहीं किया जा सकता था। शादी के वक्त बाबू कालिका प्रसाद ने उसको इस बात की हवा भी न आने दी कि लड़के को कोई बीमारी भी है अपने लड़के की जिन्दगी और पराये घर की नादान लड़की की जिन्दगी के तहस-नहस हो जाने का डर भी बाबू कालिका प्रसाद को सूर्यकांत की शादी करने से नहीं रोक सका। यह सही है कि सूर्यकान्त ने खुद शादी के लिए बहुत उतावलापन दिखलाया था और कहा था कि अगर आप लोग मेरी शादी नहीं कर देंगे तो मैं अपनी शादी खुद कर लूंगा। लेकिन इसका हरगिज मतलब नहीं था कि सूर्यकांत की इस बेजा इच्छा को पूरा किया जाय और लड़के के साथ-साथ एक नादान बेकस लड़की की जिन्दगी चौपट कर दी जाय, उसके गले में फांसी लगा दी जाय। कौन नहीं जानता कि तपेदिक के रोग में रोगी का मन उसके काबू में नहीं रह जाता। मुहल्ले के कितने ही बड़े-बूढ़े लोगों ने, जो मुख्तार साहब के करीबी दोस्त थे, चुपके-चुपके कहा—मुख्तार साहब, लड़के की शादी मत कीजिए, उसे तपेदिक है। तपेदिक में शादी जहर है। मुख्तार साहब ने अपनी सफाई देते हुए कहा—लड़का मानता जो नहीं। कहता है, अगर आप लोग मेरी शादी न कर देंगे तो मैं अपनी शादी खुद कर लूँगा। लोगों ने कहा—वैसी हालत में आपका फर्ज है सब जगह जाहिर कर दें कि लड़के को तपेदिक है। कोई बाप आप ही अपनी लड़की की शादी उससे न करेगा। मुख्तार साहब को यह बात बुरी लगी। उन्होंने मुँह बिचका दिया जैसे बहुत पुराना बहुत तेज़ सिरका

काफ़ी सा पी गये हों। बोले—भाई, यह तो अपने राम से न होगा कि अपने ही लड़के के खिलाफ़ साजिश करूँ। तिवारी जी ने कहा—यह तो आप की सरासर ज्यादती है। इसका मतलब तो यह है कि आप एक निर्दोष लड़की की हत्या करने पर तुले हैं। अगर आपने लड़के की शादी की तो लड़के और बहू की हत्या के पापका भागी आपको बनना पड़ेगा। मुख्तार साहब बेहया आदमीकी तरह हँस दिये। बोले—आप भी कैसी बात करते हैं तिवारीजी? अभी तो उसकी बीमारी की पहली स्टेज है। तिवारी जी ने चुटकी ली—तभी आप उसकी शादी कर देना चाहते हैं जिसमें उसकी बीमारी जल्दी ही आखिरी स्टेज पर पहुँच जाय। ..

बहरहाल मुख्तार साहब पर किसी बात का कोई असर न हुआ और उन्होंने अपने लड़के की बीमारी की बात दबाकर उसकी शादी कर दी। ...रमा ने अपने मन में कहा अभी उस दिन शादी हुई थी और आज लोग मेरे सामने से उनकी लाश उठाकर ले गये हैं।... रमा का चेहरा बहुत अजीब-सा है—हरदम उस पर व्यथा की एक बहुत गहरी छाप रहती है—उसके चेहरे की शक्ल ही कुछ ऐसी है। फिर जब वह रोती है तो बारिश में नहाये हुए पत्तों जैसा उसका चेहरा निकल आता है।

'उनके अन्त समय भी सास-ससुर ने धोखा दिया जो मैं उनके दर्शन नहीं कर सकी', और उसका मन कराह उठा। लेकिन वहाँ उसकी कराह को सुनने वाला कोई नहीं था। जो औरतें उसके साथ बैठी थीं, वे टोला पड़ोस की थीं, परिवार से उनका कोई विशेष सम्बन्ध न था। जिनका परिवार से सम्बन्ध था वे तो अन्दर बैठी थीं। आज रो-रोकर अपने हृदय की सारी पीड़ा बहा डालने की कोशिश कर

रही थीं। बाहर वाली औरतें तो रस्मिया आ गयी थीं। कोई उनको अन्दर ले जाने के लिए नहीं आया। उन्हीं औरतों में रमा भी थी, रमा जिसके सुहाग का सेंदुर पुँछ गया था, रमा जिसके साथ धोखा किया गया, जिसकी जिन्दगी जान बूझकर तबाह की गयी, जिसके गले पर छुरी चलायी गयी, जो घर के बड़े लड़के की बहू थी। पति के मरने के बाद ही वह पहुंच सकी, सूचना उसे इतनी देर से दी गयी। और पहुंची तो पलक मारते ही दुनियाँ उसके लिये बदल गयी, सर पर पहाड़ गिर पड़ा, आँखों के आगे अँधेरा छा गया, लेकिन किसी ने उसे ढाढ़स बँधाने की, चुमकारने-पुचकारने की जरूरत नहीं समझी, किसी ने उसके आँसू नहीं पोंछे, कोई उसको घर के अन्दर नहीं ले गया। वह घर उसका नहीं था। वहाँ कोई अपना न था। सबको उसकी सूरत से नफरत थी। उसका क्या अपराध है, वह नहीं जानती। लेकिन सब उससे जलते हैं। जिस सास ने उसकी जिन्दगी को हमेशा के लिये अँधेरा कर दिया, उनकी आज कहीं शक्ल नहीं दिखलाई पड़ी कि वे इस निरीह लड़की का दुख कम करतीं, दुःख जो उसको उन्हीं लोगों के कारण भोगना पड़ रहा है।

रमा वहीं बाहर बरामदे में बैठ गयी और बैठी रही। डूबते सूरज की रोशनी उसके चेहरे पर पड़कर उसे और भी पीला बना रही थी। घर के अन्दर बैठी हुई औरतों ने उसके माथे का सेंदुर पोंछने में बड़ी तत्परता दिखलायी थी और इस वक्त सूरज की पीली रोशनी में उसका यों ही पीला, मुरझाया हुआ चेहरा पोली मट्टी से पोती हुई पट्टी का-सा दीख रहा था जिस पर गांव के लड़के ने ककहरे का पहला अक्षर भी न लिखा हो। घर की औरतों को उससे कोई सरोकार नहीं था। वे उसे बिल्कुल भूल चुकी थीं और उनमें से कई, काफी रोना गाना करने के

बाद अपने बाल-बच्चों की, गृहस्थी की, बीमारी आरामी, और महँगी की बातें करने लगीं थीं।

दूसरों को रमा की चिन्ता रही हो चाहे न रही हो, पानी की बाल्टी और झाड़ू लिये वहीं पर खड़ी नौकरानी को उसकी चिन्ता जरूर थी। बार-बार मालकिन का हुक्म हो रहा था कि बरामदे को धो डाल, वहीं पर लाश रखी गयी थी। लेकिन वह बरामदा धोये तो कैसे जब वहाँ पर चार औरतें बैठी हुई हैं। और उनको वह वहाँ से हटने को कहे कैसे—इतनी हिम्मत भी तो होनी चाहिये। और टोले पड़ोस की औरतों की बात होती तो चाहे वह एक बार हिम्मत करती भी, लेकिन जब बहूरानी भी वहीं बैठी हैं।

आयीं मालकिन की बड़ी बहिन और कह गयीं—रुपिया, बरामदा धो डाल। रुपिया ने सुना, लेकिन उससे कहते न बना कि बहूरानी बैठी हैं। मौसी जी हुक्म लगा कर चली गयीं और रुपिया फिर पानी की बाल्टी और झाड़ू लिये खड़ी रही रमा पर कोई असर न था, उसने इन लोगों की बात सुनी भी या नहीं, कहना मुश्किल है।

फिर आयीं मालकिन की मँझली लड़की प्रेमा। पाँच साल हुए उनकी शादी को। अब दो बच्चों की माँ है। शादी के बाद और बच्चे होने के बाद उनका शरीर और भी भर आया है, चेहरा, बाँहें, वक्ष सभी कुछ। खत्रानियों जैसा उनका शरीर है, गोरा, चिट्टा, गदराया हुआ। उनका साज-श्रृंगार भी वैसा ही है। कमर में भारी सी करधनी, हाथ में पन्द्रह-पन्द्रह चूड़ियाँ और ब्रेसलेट, कान में ऐरन, पैर में ढेर-ढेर से लच्छे और बिछिये। बाल खूब संवारे हुए, खूब मोटी सी चोटी, खूब चौड़े किनार की पतली रंगीन मिल की धोती। रुपिया को प्रेमा के साज-श्रृंगार पर बड़ा अचरज हुआ। उसने मन में कहा—कैसी है बिटिया जो आज

भी इनका साज-श्रृंगार छूटा नहीं, वैसे ही तेल फुलेल करके साँड़ की भांति घूम रही हैं। इनको घर की गमी तक की कोई फिक्र नहीं, एक पेट का भाई मरा है, लेकिन माथे पर शिकन नहीं, सिंगार-पटार में कोई फरक नहीं।

प्रेमा ने कहा—महरी, खड़ी-खड़ी मुंह क्या ताक रही है, बरामदा क्यों नहीं धो डालती ?

महरी ने कुछ कहा नहीं, पूर्ववत् चुपचाप खड़ी रही। उसकी समझ में ही नहीं आ रहा था कि क्या कहे। प्रेमा चली गई। प्रेमा की बात सुनकर रुपिया का कलेजा जैसे सुलग उठा। कैसा हुकुम चला गयीं रानी साहब ! लाज नहीं आती, ऐसा बन ठनकर घूम रही हैं। आज तो सिंगार न किया होता ! इनके लेखे सबका मरना जीना बराबर है। फिर रमा को वहीं पत्थर की तरह निश्चल बैठी देखकर उसके मन में विचार आया—कैसे कहूँ कि बहूजी, उठ जाइये, यहां पानी डालना है। उसके हृदय की पीर को रुपिया ने अनुभव किया और उसी अनुभूति ने उसकी जबान पर ताला जड़ दिया। उसकी हिम्मत ही न पड़ती कि रमा से कुछ भी कहे—जो बियाबान में खड़े उस पेड़ के समान थी जिस पर बिजली गिरी हो। रुपिया ने अपने मनमें कहा—कौन समझ सकता है बहूरानी की पीर ? इनकी तो जिन्दगी उजड़ गई। अब रहा क्या, अभी यहां बैठी हैं, उठा कर कहीं और बिठाल दो वहीं बैठ जायेंगी। इनकी पीर समझाऊँ सँझली बिटिया को, जो आज ऐसे सँवरकर इठलाती घूम रही हैं जैसे शादी ब्याह का घर हो ?

तब आयीं प्रेमा की भावज, चचेरे भाई की पत्नी। उन्होंने तो बहुत सादगी से आ कर मालकिन का हुक्म दोहरा दिया और घर के अन्दर चली गयीं। किसी पर कोई असर न हुआ।

तब रिपोर्ट हुई मालकिन से और उनका चेहरा गुस्से से तमतमा उठा। मालकिन बिल्कुल मारवाड़िन दीखती हैं, पेट कर्धनी से १० इंच बाहर निकला रहता है। कमर से छोटी बड़ी पन्द्रह-बीस चाभियों का गुच्छा लटकता रहता है। माँग-पटिया के मामले में इस लम्बी उम्र में भी जबकि उनके कई नाती पोते खेल रहे हैं, उनमें कोई ढिलाई नहीं आई है। चौड़ी-सी मांग निकालकर उसमें पौवा भर सिंदूर भरेंगी—दूर से देखने से लगेगा कि किसी ने जोर से सर पर लाठी मारी है और सर खुल गया है—माथे पर बड़ा सा टीका देंगी, हरदम मुँह में तमाखू, सुपारी, कत्था, चूना, लौंग भरे रहेंगी।

मालकिन का चेहरा गुस्से से तमतमा उठा और वह झमककर बाहर गयीं और रास्ते भर रमा को गंदी-गंदी गालियाँ—जो कि औरतें ही सुना सकती हैं—सुनाती गयीं। बरामदे में पहुंचकर महरी को जोर से डाटा, तू बड़ी सिर चढ़ी हो गई है रुपिया! रुपिया ने कुछ कहने के लिये मुँह खोला, लेकिन मालकिन रुकीं नहीं—घंटे भर से मैं कह रही हूँ कि बरा-मदा धो डाल, बरामदा धो डाल, लेकिन कान पर जूँ भी नहीं रेंगती। हरामजादी, मारते-मारते खाल उधेड़ लूँगी।

रुपिया बिल्कुल सिटपिटा गयी। वह यों भी मालकिन को बाघ के समान ही डरती है। लेकिन आज उसने उनका जो चंडी रूप देखा वह पहले कभी नहीं देखा था, बिल्कुल कांप गयी। मालकिन के इलाके पर की है, इसलिए मालकिन अगर सचमुच मारते-मारते चमड़ी उधेड़ लें तो भी ताज्जुब नहीं, कहीं उसकी कोई सुनवायी नहीं होगी, खेत चला जायगा, झोंपड़ी में आग लगवा दी जायेगी। रुपिया इस बात को अच्छी तरह समझती है। जानती है कि मालकिन अपने हाथ से मारते-मारते उसकी चमड़ी उधेड़ ले सकती है।

तो भी काँपते-काँपते उसने कहा—बहूरानी...

शेर को गोली लगने से जैसे वह तड़प कर गोली चलाने वाले पर वार करता है, मालकिन ने उसी तरह रुपिया पर वार किया—बहूरानी... राँड । तू पानी डालती क्यों नहीं, नहीं हटेगी तो रंडी आप भीग जायेगी । खड़ी मुँह क्या ताक रही है, डाल, पानी डाल ।

और रुपिया ने बाल्टी का पानी लुढ़का दिया । रमा तो पत्थर की मूर्ति हो गई थी । वह अपनी जगह से जरा भी न सरकी । पानी आया और उसके पेटीकोट और धोती के निचले छोर को भिगोता हुआ बह गया । फिर रुपिया ने झाड़ू से पानी इधर-उधर मार दिया और बरामदा धुल गया । मालकिन घर के अन्दर चली गईं । फिर शान्ति छा गयी । रमा थोड़ा अन्दर सरक कर बैठ गई । उसकी करुण मुखमुद्रा देखकर खामोशी से बैठी जुगाली करती हुई गाय का ध्यान सहसा आ जाता । रमा जुगाली करती हुई बैठी थी । उसके मुँह में उसकी चबायी हुई जिन्दगी । उसका मन विफल आक्रोश से भर गया और...

उसे ध्यान आया उस दिन का जब मालकिन ने उसे रोटी चुरा-कर खाने पर से मारा था । मालकिन मकान के पिछवाड़े वाले बाड़े में का इन्तजाम देखने और वहीं खेत से टमाटर तोड़ने के लिए गयी हुई थीं । बारह बजे दिन का वक्त था, मुख्तार साहब कचहरी जा चुके थे, सभी लड़के-लड़कियाँ अपने अपने स्कूल चले गये थे । घर में बस रमा अकेली थी । रमा को बहुत जोर की भूख लगी हुई थी । सबेरे का खाया हुआ चार दाना पेट में आखिर कितनी देर चलता ? और जवान लड़की का शरीर । कसकर भूख लग आयी, लेकिन खाना निकालकर खा नहीं सकती, क्योंकि सासजी का हुक्म है कि मेरे साथ खाओ । वह एक डेढ़ के पहले कभी खाती नहीं—उसके पहले उनकी भूख ही नहीं खुलती ।

तो उनके लिए तो वह वक्त बहुत ठीक है, लेकिन अब बेचारी रमा अपने पेट को क्या करे जो उसे दस ही बजे से भूख सताने लगती है। दस से लगाकर एक डेढ़ तक खाने का इन्तजार करना रमा को एक सदी का इन्तजार मालूम होता, अग्नि-परीक्षा जान पड़ती। व्यर्थ की अग्नि-परीक्षा! लेकिन रमा में इतना साहस न था कि सासजी का हुक्म न माने। लाचार वह रोज उतना इन्तज़ार करती—सासजी उसे लड़की समझती ही नहीं, बड़ी बूढ़ी गिरस्तू औरत समझती हैं, जिसे सबको खिलाकर खाना चाहिए, चाहे आंतें कितना ही कुलबुलाएँ—यही तो सारी मुश्किल की जड़ थी।...उस दिन भूख के मारे बेचारी से ज़ब्त न हुआ और जब सासजी नीचे मकान के पिछवाड़े गयी हुई थीं, रमा चौके में चली गयी और एक रोटी और दाल निकालकर जल्दी - जल्दी मुँह में भरने लगी, जिसमें सासजी के आने के पहले ही वह हाथ मुँह धोकर बैठ जाय; लेकिन कुछ ऐसी बदकिस्मती थी कि सासजी एक तरह से तत्काल ही वापस आ गयीं। देखा, रमा चौके ही में बैठी जल्दी जल्दी रोटी दाल भकोस रही है। देखते ही उनके गुस्से का ठिकाना न रहा। रमा की बुरी दशा थी—अन्दर की सांस अन्दर, बाहर की सांस बाहर। उसकी चोरी जो पकड़ी गयी थी।

मालकिन ने आवाज़ देकर रमा को बाहर निकाला। उन्होंने घुड़ककर पूछा—क्या कर रही थी?

बेमतलब सवाल! इस सवाल का भी कोई जवाब है? बदतमीज़ी का सवाल। रमा ख़ामोश रही। मालकिन ने दो तीन बार अपनी बात को दोहराया, लेकिन रमा की तरफ से कोई जवाब नहीं। इससे मालकिन और भी आगबबूला हो गयीं। चोरी की चोरी, ऊपर से सीनाज़ोरी—चुराकर खाती है और फिर बात पूछी जाती है तो जवाब भी नहीं देते

बनता। कोई भूँका करे, इनके ठेंगे से, इन्हें तो अपना ढींढ़ा भरने से मतलब। रमा जवाब देती भी तो क्या देती। चुप बैठी रही। सासजी थोड़ी देर खामोश रहीं और फिर जैसे उनके भीतर उफान आया। बोलीं क्यों री कलमुँही, तेरे माँ-बाप तुझे भरपेट खाने को भी नहीं देते थे क्या जो तेरी चोरी की आदत पड़ गयी है ? रमा के मन में सच्चा जवाब बिजली की तरह कौंध गया—अपने घर में मुझे चोरी का सहारा नहीं लेना पड़ता था, जो कुछ रूखा सूखा घर में बनता था उसी में सबको खाना होता था और सब मजे में खाते-पीते थे । चोरी तो मुझे इसी घर में करनी पड़ती है, जहाँ एक-एक टुकड़े के लिए मुझे दूसरों का मुँह ताकना पड़ता है...लेकिन सच जवाब से फायदे की जगह नुकसान की ही ज्यादा गुँजाइश थी—इस कच्ची उमर में ही रमा सीख गयी है कि विशुद्ध सत्य का भार उठाने का बल आज के संसार में नहीं है। चुप रह जाना ही उसने ठीक समझा, सौ रोगों का एक इलाज। लेकिन सासजी ने उसके माँ-बाप का नाम लिया था, यही बात उसे अखर रही थी—कांटे की अनी अन्दर ही टूट गयी थी और दुख रही थी। चढ़ती, उबाल पर की उमर, कोई तीखा, जहर में बुताया हुआ जवाब देने के लिए तबीयत मचल उठी। लेकिन साथ ही रमा अपनी स्थिति की असहायता से भी बेखबर नहीं थी, इसलिए उसने दबी जबान से सिर्फ इतना कहा—अम्माजी, आप मेरे अम्मा-बाबू को कुछ न...

बात पूरी भी न हो पायी कि सासजी के बलिष्ठ हाथ का एक भरपूर तमाचा रमा के गाल पर पड़ा और पाँचों उंगलियाँ गाल पर उभर आयीं; रमा अपनी बेबसी को समझकर लगी फूट फूटकर रोने। उसके आँसू देखकर सासजी को और आवेश चढ़ा और उन्होंने गला फाड़कर कहा—टेसुए ढरकाती है छिनाल ! तेरा खसम तुझे बचा ही तो लेगा जैसे !

तेरे दोनों के मुँह में लुआठी लगा दूँगी, समझ रखना। मुझसे यह तिरिया चरित्तर तो न खेल हरामजादी ! कहकर रमा पर पूरा हमला कर दिया और तमाचों, लात घूसों से उसका भुर्ता बना दिया।...

तब रमा ने यह बात किसी से भी नहीं कही थी, अपने पति से भी नहीं, क्योंकि वह नहीं चाहती थी कि माँ-बेटे में रंजिश हो। उसने अन्दर ही अन्दर सारे दर्द को दबा लिया था। इसीलिए आज, जब कि उसकी कहानी को धैर्य के साथ सुननेवाला भी कोई नहीं है, उसका सारा वह पुराना दर्द पुरवा चलने पर किसी भूली-बिसरी चोट की तरह चिलक उठा है। उसे लगा कि उसके शरीर का एक एक जोड़ दुख रहा है।

तभी रुपिया का लुढ़काया हुआ पानी आया और अपने साथ इस स्मृति को बहा ले गया। लेकिन, नहीं बहा ले जा सका उसकी पीड़ा को। उसके मन को मरोड़ती हुई एक दूसरी स्मृति उठी—

बच्चा तब पेट में था। रमा ने अपनी सासजी से कहा—माजी, मुझे मैके न भेजिये ! मुझे यहीं एक कमरा दे दीजियेगा। मैं किसी को कोई तकलीफ़ न पहुंचाऊँगी। मुझे घर जाते लाज लगती है। अम्मा-बाबूजी के सामने कैसे जाऊँगी ? मुझे मत भेजिए, माजी ! बच्चा हो जाने पर भेजियेगा...

मुस्कुराहट को अपने से कोसों दूर रखते हुए, कसाई की-सी मुद्रा में सासजी ने क्रूरता से कहा—पेट फुलाते बखत लाज नहीं लगी; अब बियाने का बखत आया तो लाज लगती है...

ताने की बातें विद्रूप की हँसी के साथ कहने का रिवाज है। लेकिन सासजी ने यह रिवाज तोड़ दिया है, क्योंकि उनका विश्वास है कि हँसी जिस तरह की भी हो बात के प्रभाव को नष्ट कर देती है।

रमा उस दिन भी ( अभी उस बात को हुए भी कितने दिन, मुश्किल से नौ-दस महीने ) सासजी की बात सुनकर काँप गयी थी और आज उसे याद करके फिर काँप गयी। ज्यादा नहीं, बस एक बार हल्की सी कँप-कँपी। रमा आज तक इस बात को नहीं समझ पायी है कि उसे किस अपराध का दण्ड दिया जा रहा है। उसने किसका क्या बिगाड़ा है जो उसके साथ सभी लोग इतनी क्रूरता से पेश आते हैं। रमा शान्त स्वभाव की लड़की है लेकिन इन सारी पिछली बातों को याद करके उसको ऐसा लगता है कि खून की जगह लाल मिर्चों का घोल उसकी धमनियों में बह रहा है और उसका सारा शरीर, भीतर-बाहर, क्षत-विक्षत है। रमा का दमसा घुटने लगा और बहुत बेचैनी हो गयी। उसका मन न आज की बड़ी विपत्ति पर पूरे समय टिक पाता और न बीते कल की उन तीखी-तीखी बातों पर जिन्हें सोचकर आज भी उसका कलेजा मुँह को आता है।

रमा उसी तरह बैठी रही—मुख की मुद्रा भावहीन-बिल्कुल भावहीन। पीड़ा का अनुभव करने की क्षमता कबकी उससे विदा हो चुकी थी। वह तो बस बैठी हुई थी क्योंकि दूसरा कुछ उसे सूझ ही नहीं रहा था और सूझता भी क्या!

अब अन्दर फिर बहुत खलबली मची हुई थी। शाम होती जा रही थी। शाम को थोड़ी ठंडक भी पड़ने लगी थी। गर्मी में आई थीं औरतें। घर जाने के पहले सूतक से शुद्धि के लिए नहाना ज़रूरी था। धूप रहते नहा लेतीं तो कम तकलीफ होती। नहाने में जितनी ही देर होगी, तकलीफ़ उतनी ही बढ़ेगी। लेकिन वे जल्दी नहायें कैसे, वह पापिन, राँड जो अभी नहीं नहायी है। रमा नहा ले तब तो दूसरे लोग नहायें।

लेकिन रमा को नहाने-धोने का ध्यान कहां। वह तो बिलकुल जड़ हो गयी थी। इतनी कि उसे इस बात का ध्यान भी न था कि अगर अपने लिए नहीं तो कम से कम उन औरतों का ख़याल करके नहा डाले। पर इतनी समझ भी उसमें नहीं थी। अन्दर इसी बात की खलबली मची हुई थी। सबके सामने यही समस्या थी कि किस तरह रमा को नहाने के लिए कहा जाय, वह किसी की सुनती ही नहीं। जब किसी को कोई हल न सूझा तब मालकिन ने एक हल निकालकर सबका उद्धार किया...

...रमा बिलकुल नहा गयी, कपड़े-कपड़े सब बिलकुल भीग गये।

रुपिया ने एक बाल्टी पानी लाकर रमा के सिर पर उँड़ेल दिया था, अब रमा ने नहा लिया था और अब दूसरी औरतों के लिए भी जल्दी जल्दी दो-दो लोटा पानी डालकर शुद्ध हो जाने का रास्ता खुल गया था।

झुरझुरी के बावजूद रमा बैठी रही। लेकिन, अब उसके छोटे भाई से, जो उसके साथ आया था, और न सहा गया। बच्चा था, और न देख सका। बोला—दीदी, चलो।

रमा उठ खड़ी हुई, आखिर कब तक यों ही बैठती। धीरज का भी अन्त होता है। पास खड़ी औरतों को सुनाकर बोली—बड़ा गुमान है इस घर का, तो इतना समझ लें मालकिन कि भगवान हमारा भी है। जो कुछ उन्होंने हमारे साथ किया है, वह सब उसने देखा है, एक-एक ईंट इस मकान की न खिसक जाय तो कहना, मुँडेर चढ़कर उल्लू न बोले तो कहना। थू।

और वहीं थूककर, वह गीले कपड़े पहने, बच्चे को गोद में लिये, सर्दी में कांपती अपने भाई के पीछे पीछे चलने लगी। चलते चलते वह

सोच रही थी कि वह एक दुनिया में आग लगा कर जारही है। लेकिन कहीं आग लगा न थी। वह दुनिया अपनी जगह पर बदस्तूर कायम थी रमा के थोड़ी देर बाद प्रेमा, वैसी ही बनी - ठनी, सजी-सँवरी, अपने छोटे देवर के साथ निकली और अपने घर चल दी। मातमपुर्सी खतम हो गई थी। रोने -गानेवाली दूसरी औरतें भी थोड़ी देर बाद निकलीं और अपने-अपने घरों को चली गयीं।

जिस कमरे में सूर्यकान्त मरा था, वह अब सूना - सूना लगता। यही सबको खटकता। आखिरकार कमरे को फिनाइल वगैरह से धो-धाकर और वहां बहुत सी नीम की पत्तियां जलाकर उससे तपेदिक को निकाल बाहर किया गया और मरा यूनिवर्सिटी के एक विद्यारथी को पाँच रुपये महीने किराये पर दे दिया गया। सारा सूनापन जाता रहा। और लोग सूर्यकांत को एक अशुभ सपने की तरह भूल जाने की कोशिश करने लगे। सती साध्वी रमा का शाप विफल हुआ। कोई भी जाकर देख सकता है, १७ मेली रोड पर घर अब भी खड़ा है, उसकी एक ईंट भी नहीं खिसकी।

# रहमान का बेटा

विष्णु

क्रोध और वेदना के कारण उसकी वाणी में गहरी तलखी आ गई थी और वह बात बात में चिनचिना उठता था। यदि उस समय गोपी न आ जाता तो सम्भव था कि वह किसी बच्चे को पीटकर अपने दिल का गुबार निकालता। गोपी ने आकर दूरसे ही पुकारा—साहब सलाम भाई रहमान। कहो क्या बना रहे हो ?

रहमानके मस्तिष्क का पारा सहसा कई डिग्री नीचे आगया यद्यपि क्रोधकी मात्रा अभी भी काफी थी, बोला—आओ गोपी काका। साहब सलाम।

—बड़े तेज हो, क्या बात है ?

गोपी बैठ गया। रहमानने उसके सामने बीड़ी निकालकर रखी और फिर सुलगाकर बोला—क्या बात होगी काका ! आजकलके छोकरोंका दिमाग बिगड़ गया है। जाने कैसी हवा चल पड़ी है। मा बापको कुछ समझते ही नहीं।

गोपी ने बीड़ीका लम्बा कश खींचा और मुस्कराकर कहा—रहमान, बात सदा ही ऐसी रही है। मुझे तो अपनी याद है। बाबा सिर पटक कर रह गये मगर मैं चटशालामें जाकर ही नहीं दिया। अब बुढ़ापेमें वे दिन याद आते हैं। सोचता हूँ, दो अच्छर पेट में पड़ जाते तो...।

बीचमें बात काट कर रहमान ने तेजीसे कहा—तो काका, नशा चढ़ जाता। अच्छरोंमें नाजसे ज्यादा नशा होवे है यह दो अच्छरका नशा

ही तो है जो सलीमको उड़ाये लिए जाते है । कहवे है इस बस्ती में मेरे जी नहीं लगे । सब गन्दे रहते हैं । बात करने की तमीज नहीं । चोरी करनेसे नहीं चूके...

गोपी चौंक कर बोला –सलीम ने कहा ऐसे ? —जी हाँ, सलीमने कहा ऐसे और कहा हम इंसान नहीं हैं, हैवान हैं। फिर हम जैसे नाली में कीड़े बिलबिलाते हैं न उसी तरह की हमारी जिन्दगी है ।...
कहते कहते रहमान की आँखे चढ़ गई । बदन कांपनेलग हुक्के को जिसे उसने अभी तक छुआ भी नहीं था, इतने जोर से पैरसे सरकाया कि चिलम नीचे गिर पड़ी और आग बिखर कर चारों ओर फैल गई । तेजी से पुकार—करीमन ! ओ हरामजादी करीमन ! कहाँ मर गई जाकर । ले जा इस हुक्के को । साला, आज हमें गुण्डा कहवे है...।

गोपीने रहमानकी तेजी देख कर कहा—उसका बाप स्कूलमें चपरासी था न...।

—जी हाँ, वही असर तो ख़राब करे है । पढ़ा नहीं था तो क्या; हर वक्त पढ़े लिखेके बीच रहवे था । मगर साले ने किया क्या ? भरी जवानी में फैलाकर मर गया । बीबी को कहींका भी नहीं छोड़ा । न जाने किसके पड़ती, वह तो उसकी मा ने मेरे आगे धरना दे दिया । वह दिन और आज का दिन; सिर पर रखा है । कह दे कोई सलीम रहमानकी औलाद नहीं है । पर वह बात है काका...आगे जैसे रहमानकी आँखमें कहींसे आकर कुछाक पड़ गई । जोर जोर से मलने लगा । उसी तरह शून्यमें ताकते ताकते गोपी ने कहा—सलीम की मा बड़ी नेक दिल औरत है ।

रहमान एकदम बोला—काका फरिश्ता है । ऐसी नेकदिल औरत कहाँ देखनेको मिले है आज कल । क्या मजाल जो कभी पहिले शौहर का नाम लिया हो ! ऐसी जी जान ने खिदमत करे है कि बस सिर नहीं

उठता। और काक उसी का नतीजा है। तुमसे कुछ छुपा है। कभी इधर-उधर देखा है मुझे।

गोपीने तत्परता से कहा—कभी नही रहमान, मुँह देखेकी नहीं; ईमान की बात है। पाँच पंचो में कहने को तैयार हूँ।

—और रही चोरी की बात! किसीके घर डाका मारने कौन जावे है। यूँ खेतमें से घास पात तुम भी लावो ही हो, काका।

गोपी बोला—हाँ लावूं हूँ। इसमें लुकाव की क्या बात है। और लावें क्यों न ? हम क्या इतने से भी गये ? बाबू लोग रोज जेब भर कर घर लौटे हैं। सच कहूँ रहमान! तनखा बाँटते वक्त अँगूठा पहले लगवा लेवे हैं और पैसों के वक्त किसी गरीब को ऐसी दुत्कार देवें कि बिचारा मुँह ताकता रह जावे है। इस सत्यानासी·राज में कम अँधेर नहीं है। पर बेमाता ने हमारी सरकारकी किस्मत में न जाने क्या लिख दिया है, दिन रात चौगुनी तरक्की होवे है। गांधी बाबा की कुछ भी पेश नहीं आवे।

रहमानने सारी बातें बिना सुने उसी तेजी से कहा—बाबू क्यों ? वे जो अफसर होते हैं; साब बहादुर, वे क्या कम हैं ? किसी चीज पर पैसा नहीं डाले है। और काका! यह कलका छोकरा सलीम हमें गुण्डा बतावे है। गुण्डे साले तो वे हैं। सच काका! कलब में सिवाय बदमाशी के वे करें क्या हैं। शराब वे पियें, जुआ वे खेलें और...।

—और क्या ? हमारे साबके पास आये दिन कलबका चपरासी आवे है। कभी सौ, कभी डेढ़ सौ, सदा हारे ही है पर रहमान, उसकी मेम बड़ी तकदीर की सिकन्दर है। जब जावे जब सौ सवा सौ खींच लावे है।

—मेम साब !...काका तुम क्या जानो ? उनकी बात और है। जितने ये साब बहादुर हैं; और साब क्यों, बड़े-बड़े वकील, बलिस्टर, लाला सभी आजकल कलब जावे हैं। मुसलमान को शराब पीना हराम है पर वहाँ बैठ कर विस्की, जिन, पोर्ट सेरी सब चढ़ा जावे हैं। औरतें ऐसी गिर गई हैं कि पराये मरद के कमरमें हाथ डालकर लिये फिरे हैं और वे हँस हँस कर खिलर खिलर बातें करे हैं। काका ! जितनी देर वे वहां रहवे हैं; ये यही कहते रहे हैं—उसकी बीबी खूबसूरत है। इसकी जोरदार है। सरमा खुश किस्मत है, रफीक की लौंडिया उसके घर जावे है। गुप्ता की बीवी उसके पास रहे है। सारा वक्त यही घुसर पुसर होती रहे और मौका देख कोई किसीके साथ उड़ चला। उस दिन जीत की खुशी में झूमा हुआ था। पुलिसके कप्तान लालाजी बने थे। वे लालाजी बनकर लोगों को हँसाते रहे और और मेजर साहब उनकी बीबी को लेकर डाक बँगले की सैर करने चले गये। ये है बड़े लोगनका चाल-चलन। ये हमारे आका...हमारे भाग की लकीर इन्हींकी कलमसे खिचे हैं।

गोपी ने फिर जोर से बीड़ी का कश खींचा और गम्भीरतासे से कहा—रहमान ! देखने में जो जितना बड़ा है असल में वह उतना छोटा है।

—और खोटा भी।

—और क्या।

—और इन्हीं के लिये सलीम हमें बदतमीज, बदसहूर, बेअकल, न जाने क्या कहवे है। मैंने भी सोच लिया है आज उससे फैसला करके रहूँगा। मैंने हमेस उसे अपना समझा है। नहीं तो...नहीं तो...।

गोपी ने अब अपना डंडा उठा लिया। बोला—रहमान, कुछ भी हो, सलीम तेरा ही लड़का मान जावे है। जवान है; अबे तबेसे न बोलना।

समझा; आज कल हवा ही ऐसी चल पड़ी है। और चली कब नहीं थी ? फरक इतना है पहिले मार खा कर बोलते नहीं थे अब सीधे जवाब देवे हैं...

रहमान तेज ही था। कहा—मैं उसके जवाबों की क्या परवा करूँ काका। जावे जहन्नुम में। मेरा लगे क्या है ?...और काका। मैं तो उसे मारूँगा क्यों ? मेरे क्या हाथ कुले हैं। मैं तो उससे दो बात पूछूँगा, रास्ता इधर या उधर। और काका, मुझे उस सालेकी जरा भी फिकर नहीं है। फिकर उसकी मा की है। यूँ तो औलाद और क्या कम हैं पर जरा—यही कुछ सहूरदार था...काका,सोचता था पढ़लिखकर कहीं मुंशी बनेगा, जात बिरादरीमें नाम होगा। लेकिन लिखा क्या किसीसे मिटा है ?

गोपी बोला —हाँ रहमान। लिखा किसीसे नहीं मिटा ! अब चाहे तो मालिक भी नहीं मेट सकता। ऐसी गहरी लकीर बेमाताने खींची है। सो भइया, अपनी इज्जत अपने हाथ है। ज्यादा कुछ मत कहना। पढ़ों लिखोंकी गैरत जल्दी आ जावे है। समझा...।

—समझा काका।

और फिर गोपी डंडा उठा, घास की गठरी कन्धे पर डाल, साहब सलाम करके चला गया। रहमान कुछ देर वहीं शून्यामें बैठा धुँधले होते वातावरण को देखता रहा। मन में उमड़-घुमड़ कर विचार आते और आपस में टकरा कर शीघ्रतासे निकल जाते। वे झीलके गिरते पानी के समान थे, गहरे और तेज। इतने तेज कि उफन कर रह जाते। उनका तात्कालिक मूल्य कुछ नहीं था, इसीलिए उसके मनकी झुँझलाहट और गहरी होती गई। करुणा और विषाद कोई उसे कम नहीं कर सका। आखिर वह उठा और अन्दर चला गया।

घरमें सन्नाटा था। बच्चे अभी तक खेल कर नहीं लौटे थे। उसकी बीबी रोटियाँ सेंक रही थी। सालन की खुशबू उसकी नाक में भर उठी। उसने एक नज़र उठा कर अपनी बीबी को देखा—शान्त चित्त वह काम में लगी है। उसके कानों के लम्बे बाल रोटी बढ़ाते समय वेग से हिलते हैं। उसके सिर का गन्दा कपड़ा खिसक कर कन्धे पर आ पड़ा है। यद्यपि जवानी बीत गई है तो भी चेहरे का भराव अभी हल्का नहीं पड़ा है। गोरी न होकर भी वह काली नहीं है। उसकी आँखों में एक अजीब नशा है। वही नशा उसे बरबस खूबसूरत बना देता है। जिसकी ओर वह देख लेती है एक बार तो वह ठिठक ही जाता है। रहमान सहसा ठिठका—उन दिनों इन्हीं आँखों ने मुझे बेबस बना दिया था। नहीं तो...।

सहसा उसे देखकर उसकी बीबी बोल उठी—इतने तेज़ क्यों हो रहे थे। ग़ैरों के आगे क्या इस तरह घरकी बात कहते हैं ?

रहमान कुछ तलखी से बोला—ग़ैरों के आगे क्या ? पानी अब सरसे उतर गया है। कलको जब घरसे निकल जावेगा तब क्या दुनियाँ कानों में रुई ठूँस लेगी या आँखें फोड़ लेगी।

बीबी को दुख पहुंचा। बोली—बाप बेटे क्या दुनियाँ में कभी अलग नहीं होते ?

—कौन कहे है यह मेरा बेटा है ?

—और किसका है ?

—मैं क्या जानूँ ?

—ज़रा देखना मेरी तरफ ! मैं तो सुनूँ।

तिनक कर उसने कहा—क्या सुनेगी ? मेरा होता तो क्या इस तरह कहता। ज़बान खींच लेता सालेकी।

—देखूँगी किस किसकी जबान खींचोगे। अभी तक तो एक भी बात नहीं सहारता।

—बच्चे और जवान बराबर होते हैं।

—नहीं होवें पर पूतके पाँव पालने में नजर आ जावें हैं। और फिर वही कौन सा जवान है? अल्हड़ उमर है। एक बात मुँह से निकल गई तो उसीको सिर पर उठा लिया। तुम्हारा नहीं तभी तो। अपना होता तो क्या इस तरह ढोल पीटते। अपनों के हजार ऐब नजर नहीं आवे हैं। दूसरों का एक ज़री-सा पहाड़ बन जावे है...।

रहमान कुछ भी हो इतना मूर्ख नहीं था। उसने समझ लिया उसने बीबी के दिलको दुखाया है पर वह क्या करे? सलीम से उसे क्या कम मोहब्बत है। पेट काट कर उसे रहमानने ही तो स्कूल भेजा है। उसके लिये अब भी कभी बड़े बाबूसे, कभी डिप्टी, कभी बड़े साहब से गिड़गिड़ाता रहता है। इतनी गहरी मोहब्बत है, तभी तो इतना दुख है। कोई गैर होता तो...।

तभी उसके चारों बच्चे बाहर से शोर मचाते हुए आ पहुँचे। वे धूल मिट्टी से लिथड़े पड़े थे। परन्तु गन्दे और अर्द्ध नग्न होने पर भी प्रसन्न थे। सबसे बड़ी लड़की लगभग बारह वर्ष की थी। आते ही खुशी खुशी बोली—अम्मी! आज हम भइयाकी जगह गये थे। रहमान को कुछ अचरज हुआ पर वह जला भुना बैठा था। कड़क कर बोला—कहाँ गई थी चुड़ैल?

लड़की सहम गई। घबरा कर बोली—भइया की जगह।

—कौन सी जगह?

—जहाँ भइया जाते हैं। दूर...।

छोटा लड़का जो दस बरसका था अब एकदम बोला—अब्बा, वहाँ बहुत सारे आदमी थे।

तीसरा भी आठ बरसका लड़का था। आगे बढ़ आया, कहा— वहाँ लैक्चर हुए थे।

रहमान अचकचाया—लैक्चर?

लड़की ने कहा—हाँ अब्बा! लैक्चर हुए थे। भइया भी बोले थे। लोगोंने बड़ी तालियाँ पीटीं!

अम्मीं का मुख सहसा खिल उठा। गर्व से एक बार उसने रहमान को देखा।

फिर बोली—क्या कहा उसने?

लड़की जो मुरझा चली थी अब दुगने उत्साह से कहने लगी—अम्मीं, भइयाने बहुत सी, बहुत सी बातें कहीं थी। हम गन्दे रहते हैं, हम अनपढ़ हैं, हम चोरी करते हैं। हमें बोलना नहीं आता। हमें खाने को नहीं मिलता।

रहमान चिहुँक कर बोला—देखा तुमने।

बीबी ने तिनककर कहा—सुनो तो। हाँ, और क्या लाली?

लड़का बोला—मैं बताऊँ अम्मीं! भइया ने कहा था इसमें हमारा ही कसूर है।

—हाँ—लड़की बोली—उन्होंने कहा था बड़े लोग हमें जान बूझकर नीचे गिराते जाते हैं और हम बोलें ही नहीं।

और फिर अब्बाकी तरफ मुड़कर बोली—क्यों अब्बा, वे लोग कौन हैं?

अब्बा तो बुत बने बैठे थे; क्या कहते?

लड़का कहने लगा—अब्बा! और जो उनमें बड़े आदमी थे सबने यही कहा—हम भी आदमी हैं। हम भी जियेंगे। हम अब जाग गये हैं।

अम्मीं ने एक लम्बी सांस खींची। चेहरा प्रकाशसे भर उठा—सुनते हो सलीमकी बातें।

रहमान अब भी नहीं बोला। लड़की बोली—और अम्मी। भइयाने मुझसे कहा था मैं अब घर नहीं आऊँगा।

—नहीं आयेगा ?

—हाँ अम्मी।

रहमान की निद्रा टूटी—क्यों नहीं आयेगा ? क्योंकि हम गन्दे हैं...?

—नहीं अब्बा!—लड़की अब आपही आप कुछ गम्भीरता से बोली—भइया ने मुझसे कहा था अब इस घरमें नहीं रहूँगा। यहाँ नया घर लूँगा, बहुत साफ, अब्बासे कह दीजे वहाँ रहने से गड़बड़ हो सकती है। हम लोगोंके पीछे पुलिस लगी रहती है। वहाँ आयेगी तो शायद अब्बा की नौकरी छूट जावे। और फिर व्यग्रतासे बोली—क्यों अब्बा! पुलिस क्यों आवेगी...?

लेकिन अब्बा हों तो बोलें। उनके तो सिरमें भूचाल आ गया है। वह घूम रहा है, घूम रहा है, रुकता नहीं...

# प्रगति और प्यार

वीरेन्द्र

'आज इतने दिनों बाद एकाएक मेरा पत्र तुम्हें कैसा लगेगा, इसकी मुझे परवाह नहीं। मुझे समा गई है कि तुम्हें लिखूँ; इसी लिए लिख रही हूँ। मेरा यह लिखना किसी के लिए भी हानिकर नहीं, क्योंकि यह मेरा तुम्हारे नाम प्रथम और अन्तिम पत्र होगा। बस, इसके बाद न मैं 'मैं' रहूँगी न मेरे पत्र लिखने की लालसा। यह लालसा भी कितनी भयानक होती है। इसी के वशीभूत होकर तो मैंने तुम पर आत्म समर्पण किया था। तुम्हें तो केवल वासना का ध्यान था पर मुझे—मेरे हृदय में तुम्हारे लिए स्नेह और आदर का जो अपार स्रोत उमड़ा करता था उसकी थाह तुम लेते भी कैसे? तुम्हें तो मुझे गिराकर खड़ा रहना ही अभीष्ट था...

मैं जीवन के प्रति संदिग्ध दृष्टिकोण लेकर पनप रही थी। मेरा जीवन ऊँची ऊँची कल्पनाओं में विचरण किया करता था। सत्य का नंगापन जब मेरे सामने आया तो मैं सिमट गई, मेरा जीवन सिकुड़ गया और मुझे परिस्थितियों के हाथ का खिलौना बनना पड़ा। तभी तुम मेरे जीवन में आये...

मैं जानती थी कि तुम मुझसे प्रेम नहीं करते पर मेरे मन में तुम्हारे प्रति जो श्रद्धा थी वह तुम जानते थे। तुमने प्रगति की ओट लेकर मुझे खूब समझाया : शरीर की भूख, मांस की पुकार कह कहकर

मेरे भीतर की स्त्री को तलमला दिया। मेरा मन कहता, शरीर कहता कि मैं तुम्हें सब कुछ देदूँ ...तुम्हारी ही बनकर रह जाऊँ। पर मेरे सामने समाज की आँखें थीं। बिरादरी और कुटुम्ब थे...

पर जीत तुम्हारी ही हुई। तुम समझदार हो। इसलिये तुमने मुझे हरा ही दिया। मैं तुम्हारे सामने निरावृत हो गई। हमारा व्यापार चल निकला और फिर हम न जाने किस लोक में निवास करने लगे... पर एक बात मुझे बहुधा खटक जाती थी : क्या तुम सचमुच मुझे प्रेम नहीं करते ? मुझ में एक स्वस्थ पुरुष के लिये कोई भी आकर्षण नहीं तब फिर और...जब कभी मैं यह सोचती मुझे अपनेआप पर झुँझलाहट आती। और मैं यह निश्चय करती अब तुमसे नाता नहीं रखूँगी पर तुम सामने आते--हरकतें करते और मेरे भीतर की पशु नारी जाग जाती...

आज अपने भीतर की उस पशुनारी पर मेरा क्षोभ है। मैं चीख-चीख कर कह सकती हूँ कि तुम्हें समर्पित 'वह' नारी मैं नहीं था। मेरी अपनी नारी आज गर्वित है। 'वह' पशु नारी मैं नहीं हो सकती। मैं इससे इन्कार करती हूँ। किन्तु तब मैं स्वयं अपने आप ही धोखाधड़ी कर रही थी...

पर, यह बात तो मैं आज समझ पाई हूँ। जब मैं काफी मनोवैज्ञानिक हो गई हूँ; अब मैं यह भली प्रकार समझ गई हूँ कि तुमने मेरे साथ बलात्कार किया है। मेरी परिस्थितियों से खेलकर तुमने उनसे अनुचित लाभ उठाया है। अब मैं यह लाभ किसी को भी नहीं उठाने दे सकती। अब, जबभी मैं अपनी पिछली जिन्दगीके बारे में सोचती हूँ तो ऐसा लगता है : जैसे मुझे ऐसा नहीं होना चाहिये था...पर फिर एकदम विचार आता है यदि मेरी पिछली जिन्दगानी जो थी वह न होती तो शायद मैं तुम्हें कभी इस प्रकार का पत्र लिखने का साहस न कर पाती। हाँ, आज मुझमें साहस है, भारीपन है। आज मैं समाज से विद्रोह करने की शक्ति भी

बटोर चुकी हूँ। अब मुझे बिरादरी और माता-पिता का ध्यान अवश्य रहता है पर अपने मन की भूख की अवहेलना मैं सहन नहीं कर सकती। मन की भूख के लिये मैं एक साथी अवश्य चाहती हूँ। चाहे वह लड़की हो या लड़का, पुरुष हो या स्त्री...

साथीपन की भावना के उभरते ही बरबस मेरे सामने तुम आ खड़े होते हो। पर, मेरा वैज्ञानिक विश्लेषण उसे उठाकर दूर फेंक देता है—तुमने मेरे लिये क्या किया ? तुम कभी इस ओर सचेष्ट नहीं रहे कि मेरी जिंदगी को अपने जीवन का एक अंग समझ सको। तुम जब आये; छेड़ छाड़ करने...

छेड़छाड़ और नारी की नंगी भावनायें। न जाने क्यों दबा लेती हैं एक स्वस्थ मन की चोरी को। यहां आकर मैं शरीर को अधिक कोसने लगती हूँ, पर यह भी तो मांग करता ही है, इसकी भूख भी बुझनी ही चाहिये ..मैं अब यह बिलकुल निश्चय कर चुकी हूँ कि जो कुछ भी करना है दिन के उजाले में करूँगी...समाज देखे, बिरादरी देखे, मेरे माता पिता देखें—अन्यथा मैं कुछ करूँगी ही नहीं...

नौकरी नारी के शरीर की भूख को काफी सीमा तक मार देती है, यह अनुभव मुझे हो गया है। या तो मैं अपना जीवन इसी प्रकार काट दूँगी; अन्यथा मैं दूसरा विवाह कर लूँगी। मुझ में हिम्मत है...पर छिप-कर, चोरी कर, कुछ नहीं करूँगी...यह मेरा निश्चय है...

तुम्हारा किसी अनजाने के नाम लिखा हुआ पत्र मैंने तुम्हारी मेज़ से उठा कर पढ़ लिया है पर धारणा नहीं बना पाया कि क्या

सचमुच जो तुम्हारा निश्चय है उस पर तुम अटल -- अविचल रह सकोगी। मेरी समस्त शुभ कामनायें सदैव की नाईं तुम्हारे साथ हैं। हाँ, यह पढ़ कर बड़ा अजीबसा लगा कि आज तुम अपने भीतर की उस नारी-'पशु नारी' तुमने जिसे कहा है-की स्थिति से इन्कार करती हो। यह तो हमेशा की रीति चली आई है। स्त्रियों ने अधिकांशतः पुरुषों को दोष दिया है, यह पुरुषों के प्रति अन्याय है। दोहरा अन्याय मत करो। एक तो उन्हें वैसे तड़पाती हो, और ऊपर से यह भी धौंस...नहीं, यह भीतर की नारी की आवाज़ नहीं है; यह तुम्हारे मनोविज्ञान और शिक्षा का आडम्बर है। तुम अब सीधी और सरल नहीं रह गई हो। तुम्हारी चेतना ने विकृति के रूप की ओर करवट ले ली है...

मुझे यह अधिकार कहाँ है कि मैं अधिकार पूर्वक तुम्हारी आलोचना कर सकूँ। पर फिर भी एक पाठक के नाते, जो कुछ भी मैं तुम्हारे अधूरे पत्र से माप सका तुम्हारे जीवन दण्ड को, वही प्रकट किए दे रहा हूँ। मुझे ऐसा लग रहा है जैसे मेरे साथ तुम से बिलकुल विपरीत होनी हुई है। मैं सदा का उच्छृङ्खल जब एकाएक एक नारी से बंधा तो जैसे जीवन-सरिता की गति थमगई। मैंने महसूस किया मेरी जिन्दगी में जो कुछ था, जो तेज़ी थी, जो सुन्दरता थी वह नष्ट हो गई है। मेरी शक्ति क्षीण हो गई है, मन और मस्तिष्क का विकास रुक गया है। आज उन दोनों का कार्य कल्पना लोक में विचरण करना हो गया...

मेरी 'कमजोरी' जो उसके पास ठहर गई थी, मुझे ऐसा लगा : मानो उस का बेजा फायदा उठाया जा रहा है। हो सकता है, यह मेरे संकुचित मन का ही प्रकाशन हो। पर मेरी ज़िद, जिसे मैं अब भी आत्म सम्मान के नाम पर पेश करता हूँ, इसे अपनी हेठी से अधिक कुछ और न

समझ सका। तुम मनोवैज्ञानिक होकर अपने भीतर की 'पशुनारी' की उपस्थिति से इन्कार करने का साहस कर सकती हो, पर मैं अपने भीतर की गहरी कालिमा और सन्देह की अनेक तरंगों को प्रकट करने में अपने को क़तई असमर्थ पाता हूँ। न जाने क्यों; शायद मेरे मन के भेद उतनी सफाई के साथ प्रकट न हो सकें।...

ऐसी दशा में मेरे मन में शिक्षा और मनोविज्ञान के प्रति एक अद्भुत घृणा उभर आई है। मैं आदमी को जानवर बना रखने के पक्ष में इस समय हो रहा हूँ। शायद यह पढ़ीलिखी लड़कियों के प्रति मेरे विद्वेष की चिनगारी जो अचेतन मनमें अस्वस्थ संस्कारों द्वारा आवेष्टित है, ऐसी भावना की उत्पत्ति हो रही है। मन उलझ रहा है। अस्त भावनायें और उन पर आश्रित जीवन की विषम स्थापनाओं के प्रति मेरा मोह अब न जाने क्यों होता जारहा है?...

अपने आप मेरी उच्छृङ्खलता को उभर कर फैलने की स्वतंत्रता मिली जा रही है। मैं नहीं चाहता पर बरबस मेरे भीतर का 'दानव' मुझे निर्देशित किए जारहा है, और मैं मोहाच्छन्न व्यक्ति की नाईं उस 'दानव' के इंगित पर सब कुछ किये चला जा रहा हूँ। मैं तुम्हारी तरह उस 'दानव' से इन्कार करने योग्य कभी हो सकूँगा, यह मुझे विश्वास नहीं; क्योंकि मेरा वातावरण अशान्त है। वातावरण के कीटाणु अतृप्त हैं, विक्षुब्ध है, पीड़ित हैं। पीड़ा जैसे साकार प्रतिमा बनकर मेरे अंतर्मन में पैठ गई है। उसको बाहर निकाल फेंकने का साहस मुझ में अवशेष नहीं है। मैं निर्बल हूँ, निःसहाय हूँ...पर...

मैं अनुभव कर रहा हूँ कि मेरी नपुसंक भावुकता अपने निज के स्वार्थों के लिए बड़े अनोखे मनोविज्ञान का सहारा लेकर मन के भेदों को सुलझाने में प्रयत्नशील है। मैं सब कुछ समझ बूझ कर भी

यह नहीं कहूँगा कि मुझ पर किसी दानवी चरित्र का आक्रमण हो गया है। मेरी भावनाओं से कोई बेजा फायदा उठा रहा है और मैं उसे उठा लेने दे रहा हूँ। यह क्या कम ना समझी है! पर अहिंसा—नहीं नपुंसकता की भावना और करे भी क्या?

●

तुम्हारे भीतर की भावुकता जिसे स्वयं तुमने ही नपुंसक भावुकता कहा है, मुझे काफी सीमा तक प्रिय लगी। नजाने क्यों-मैंने सोचा कि मेरे और तुम्हारे बीच का अब तक का सम्बन्ध इतनी दूरीका क्यों रहा? इस दूरी का विश्लेषण जब मैंने किया तो मुझे लगा जैसे तुम मेरे मन के तारों को छूने की अप्रकट चेष्टा तो करते रहे पर कभी अंगुलियों की टंकार से उन्हें झनझना न सके। हो सकता है, इसका कारण यह हो कि तुम जान गए थे कि मैं किसी को प्रेमकरती हूँ। अब तो प्रेम लिखते हंसी आती है। कैसा प्रेम और कैसी चाह? मैं अपने वर्तमान वातावरण से असन्तुष्ट होकर एक सुसंस्कृत और शिक्षित वातावरण चाहती थी। मेरी चाह थी कि कोई सांस्कृतिक-वातावरण हो जिसमें कि मैं अपना अवकाश व्यतीत कर सकूँ। अवकाश को मैं कुछ पाने का साधन बनाना चाहती थी। मेरा अरमान था कि मैं अपने भीतर नई शिक्षा की प्रगति और उसके अनुकूल भावनाओं की सृष्टि करूँ—खैर,

जो कुछ भी हो गया अब मैं उसकी याद के प्रति भी उदासीन हूँ। अपने को मैं इतना अधिक व्यस्त कर लेना चाहती हूँ कि मेरे मन और शरीर में ऐसा सामजंस्य हो जाय कि स्वरति की भी सम्भावना न रहे। मैं अपने चेतन मन से सेक्स की भावना को ही मार देना चाहती हूँ। सेक्स ही नपुंसक भावुकता को जन्म देता है। मैं इससे

ऊपर आकर रहना चाहती हूँ। पर तुम्हें यह सब बताने से लाभ ही क्या ?

हाँ, मुझे बताने से लाभ तो नहीं पर तुम्हारे मन और शरीर की भूख तो इस प्रकार के तर्क पेश करने से सन्तुष्ट हो ही जाती है। और रही नपुंसक भावुकता की बात-सो मनोवैज्ञानिक विश्लेषण भी और क्या है ?...

पर छोड़ो, हम दोनों दो राह के पथिक हैं जो पथ में एक ही स्थान पर ठहर गये हैं : इसलिए परिचय हो गया है। अन्यथा दो विपरीत दिशाओं की ओर चलने वाले पथिकों का क्या मेल ? और फिर यह भी बात है, मेरे सामने जो विषमता है वह है आर्थिक... इस अर्थिक विषमता ने ही मुझे ऐसा विकृतिवादी बना दिया है अन्यथा मैं इस मनोविज्ञान के स्वांग में क्यों पड़ूं ? व्यर्थ की कल्पनायें, जो कभी पुरी न हों। ऐसी बातें ! जीवन की अनेक असमानताओं के बीच जिस समझौते को लेकर मैं चल रहा हूँ, उन्होंने मुझे इतना झक झोर दिया है कि मेरा जीवन बड़ी विचित्रताओं का एक संगठित चित्र बन गया है। प्रत्येक क्षण, प्रत्येक पल में मैं महसूस करता हूँ जैसे मुझे, मेरे विचारों को exploit किया जा रहा है। पर विवशता है कि मन में घुटती रहती है, बाहर उफन कर बहने नहीं देती...

लेकिन हम अब कुछ और पास आते जा रहे हैं। कहीं ऐसा न न हो...पर नहीं...मैं फिर कल्पना के जाल में फंसा जा रहा हूँ। अब ऐसा नहीं होगा। मैं ऐसा नहीं होने दूंगा। अबकी बार मैं मन की हांक पर आगे नहीं बढ़ सकता—

[ प्रगति और प्यार

तुम बड़ी जल्दी-जल्दी में अपने विचारों के प्रति स्थिर एवं सत्य नहीं रह पाते। तुम्हारे इस बार के लिखने से मैंने स्पष्ट जान लिया है कि जिंदगी में तुम आर्थिक-स्थिति को अधिक महत्व देते हो। मनको पीछे फेंक कर तुम सैदव आर्थिक कुंजी से उसके भेदों का ताला खोलने की चेष्टा करते हो; पता नहीं ऐसा क्यों है ? हो सकता है, कि तुम अपने वर्तमान वातावरण या अपनी चहेती के भावों में आर्थिक मांग की अधिकाई पाते हो। पर मेरा विचार इतना संकीर्ण नहीं रह गया। जीवन की मंजिल को खड़ा करने के लिए अर्थ की आवश्यकता अवश्य होती है पर वह मुख्य नहीं होती। उसकी आवश्यकता गौण है, मन मन को टटोलता है। आर्थिक भाव उसके लिए वर्जित नहीं है पर बहुधा उसका उपयोग वह करता नहीं ...

तुम्हारी आर्थिक कुरूपता की भावना से मुझे ऐसा भी लगा। कि तुमने अपने जीवन का महत्व केवल आर्थिक असमानता के लिए लड़ने में समझ रखा है। पर यह मत भूलो...

मैं चाहती तो यह थी कि लिखती : मेरी सम्पूर्ण सहानभूति तुम्हारे साथ है पर सोच रही हूँ—तुम्हारा आत्म सम्मान कहीं इससे व्यथित न हो उठे। फिर भी तुम्हारी नपुसंक भावुकता को मैं भी exploit करूँगी। मुझे है सहानभूति तुमसे; और जब तक तुम

ऐसे ही उद्विग्न और अस्त व्यस्त रहोगे, तब तक रहेगी। यदि आर्थिक कष्ट में मेरी भेंट को अपमान न समझो तो स्वीकार कर लेना...

●

आखिर हम दोनों के बीच यह क्या होता चला जा रहा है, क्या यह नियति है—या वातावरण है या हमारे मनोभाव एक दूसरे को समझने की चेष्टा में एक-दूसरे पर आश्रित होते जा रहे हैं...पर मैं दृढ़ हूँ... आर्थिक-पहलू को महत्व देना मुझे इसलिए ज़रूरी है क्योंकि मैं इस प्रकार की व्यवस्थाओं में पला हूँ कि मुक्त हस्त रहा हूँ। आज मैं देख रहा हूँ कि मैं बन्दी हूँ...दूसरे मैं अपने ओर-पास फैले हुए समाज की तराजू पर नज़र डालता हूँ तो यह साफ दिखाई पड़ जाता है कि आदमीयत की पैमाइश का जो पैमाना उसके पास है वह सोना है—चाँदी है...और फिर नंगे भूखे कुली-मजदूर और अन्न उपजाने वाले किसान—सब एक ओर से चूसे जा रहे हैं। पूँजीवादी व्यवस्था और उनपर उग आने वाले सामन्त कालीन आदर्श प्रगति की बाढ़ में अवरोध हैं, रोक हैं। क्रान्ति और परिवर्तन के लिए इस व्यवस्था का अन्त करना ही पड़ेगा। आदमी आदमी के प्रति पशु न रहे, इसके लिए समानता की स्थापना परमावश्यक है। समानता, बिना आर्थिक—समानता के किसी प्रकार सम्भव नहीं। आज जीवन के बंटवारे में निम्न वित्त के पाले जो पड़ता है क्या तुमने उसका कभी अनुभव भी किया है? नहीं, नहीं किया होगा; क्योंकि तुम्हारी सीमित आवश्यकताओं की सीमित पूर्ति हो जाती

है। तुम्हें क्या ज़रूरत कि तुम दूसरों के अभाव की पूर्ति के बारे की कल्पना भी करो...यह स्वार्थ की भावना ही पूँजीवाद का बीज है। इसी के सहारे आज थैलीशाहों की लूट-खसोट जारी है...तुम जैसे मध्यवित्त के लोग, जो न तीन में है न तेरह में; जो समाज के लिए फालतू से बढ़ कर कुछ नहीं; इस सामाजिक क्रांति के बीच रोड़ा हैं। बुरा मत मानना, आदर्श, तथाकथित नपुंसक भावुकता के आदर्श, भी आज क्रियात्मकता के बारे में सजग होने की तैयारी करने लगे हैं...

अबकी तुम्हारी 'कम्युनिस्ट' भावना अधिक प्रखर हो गई है और इसने सचमुच ही मुझे डरा दिया है, मैं इसके सामने खड़ी नहीं रह सकती। मैं अभी तक तुम्हें केवल एक पहलू से देखती आ रही थी पर इस बार देख रही हूँ कि तुम्हारी विषमता का रूप जिस विकृति की ओर झुक रहा है वह किसी सीमा तक अच्छा अवश्य लगता है, पर क्या छलावा नहीं, मन के साथ धोखा नहीं या आर्थिक-अतृप्ति की तृप्ति का मन-खिलवाड़ नहीं ? सच मानना, मैं मनोविज्ञान की कसौटी पर तुम्हारे भाव चढ़ा कर ही यह कहने का साहस कर रही हूँ। यह मैं जानती हूँ कि तुमने जो कुछ लिखा है वह आदेश मात्र है और इस बार सही मायनों में तुम्हारी अपनी बात (term) नपुंसक भावुकता को पूर्ण रूपेण सार्थक करता है। इस प्रकार की कल्पनायें आज के दूसरे विक्षिप्त तरुण भी करते हैं और वे भी समाज की नई रूपरेखा बनाने में प्रयत्न

शील हैं पर यह कागजी-नारे सफल हो सकेंगे इसके प्रति मेरा अविश्वास है। और फिर तुम्हारे जैसे के मुँह से तो यह निरा खेल लगता है। केवल लिख भर देने से क्राँति या परिवर्तन की कल्पना कर लेना...छि: कसी आत्मप्रवंचना है...मैं तुम्हें सावधान करना चाहती हूँ इससे बचो, तुम मन के नरक से तकरा कर तनके नरक में डूबने जा रहे हो—होशियार ...!!!